भगवान् महावीर के २५वे शताब्दी समारोह के उपलक्ष मे

सचित्र

जैन कहानियां

सचित्र

जैन कहानियां

(भाग १५)

लेखक

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

भूमिका

अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्०

सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा

आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

SACHITRA JAIN KAHANIYAN

PART 15

by

Muni Shri Mahendra Kumarji Pratham

Rs 2 50

First Edition 1971

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट दिल्ली 6

शाखाएँ

हौज खास नई दिल्ली

चौड़ा रास्ता जयपुर

विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़

17 अशोक मार्ग लखनऊ

काश्मीरी गेट दिल्ली

चित्रकार श्री व्यास कपूर

मूल्य दो रुपये पचास पैसे

प्रथम संस्करण 1971

मुद्रक

रूपक प्रिण्टर्स

शाहदरा दिल्ली 32

भूमिका

मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' द्वारा लिखित जैन कहानिया (भाग १ से १०) सन् १९६१ में प्रकाशित हुई थी। भाग ११ से २५ अब सन् १९७१ मे प्रकाशित हो रहे हैं। समग्र जेन-कथा साहित्य को शताधिक भागो मे प्रस्तुत कर देने की लेखक की परियोजना है।

प्रथम १० भागो का प्रकाशन समग्र योजना के अकन का मानदण्ड बन गया। आत्माराम एण्ड सन्स जैसे विश्रुत-प्रकाशन सस्थान से एक साथ १० भागो के प्रकाशित होते ही जैन-जगत् और साहित्य-जगत् मे नवीन स्फुरणा-सी आ गई। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारो ने माना—वैदिक कहानियाँ, पौराणिक कहानिया, बौद्ध कहानिया शृ खलावद्ध होकर साहित्यिक क्षेत्र मे कब की आ चुकी है। जैन कहानियों का इस रूप मे अवतरण यह प्रथम बार हो रहा है, अत स्तुत्य है और एक दीर्घकालीन रिक्तता का पूरक है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कहा—बहुत पहले जैन समाज के अग्रणी लोगो ने मुझे कहा—जैन कथाओ को भी आप अपनी शैली और अपनी भाषा दे। मैने कहा—जैन कथा-साहित्य मुझे मिले भी? प्रस्तावक व्यक्तियों ने वडे-वडे ग्रन्थ मेरे सामने लाकर रख दिए। वे सब देखकर मैंने कहा—ये विभिन्न भाषा और विभिन्न विषयो मे आबद्ध ग्रथ मेरी अपेक्षा के पूरक कैसे हो सकेगे! इन ग्रथो मे तो प्रकीर्ण कथा-साहित्य है। मै कब तक इनको पढ सकूँगा और कब तक कथा-सग्रह और कथा-चयन कर सकूँगा तथा कब तक फिर उस कथा-सग्रह

को अपनी भाषा और अपनी शैली दे सकूँगा। मुझे तो सगृहीत व सुनियोजित कथा साहित्य दे। मेरी इस माग का समाधान उनके पास नही था, अत वह बात वही रह गई। जन कहानियों के प्रस्तुत १० भाग ज्यों ही मेरे सामने आये, अविलम्ब मै पढ गया। जन कथा-साहित्य के प्रति मेरे मन मे गुरुत्व का मनोभाव भी बना। अब इन्हें मै या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जैन कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।

श्री जनेन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सब-साधारण के लिए लिखी गई इन कथा-पुस्तकों को आप और अनेकों अन्य मूर्धन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ गये, यह क्यों ? उन्होंने बताया, 'साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानियों की कथा-वस्तु भी तो दिमाग से गढनी पडती है। नवीन कथाओं का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उवर बनाता है। नए बीज देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सबसाधारण के लिए लिखी जन-कहानियों को अविलम्ब पढ गये। साहित्यकार के अपने इस प्रयोजन के साथ-साथ जैन कथा साहित्य की व्यापकता तो स्वत फलित होती ही है।"

जन कहानिया दिगम्बर-श्वेताम्बर आदि सभी जन-समाजो मे मान्य हुई। शास्त्र सब जैन समाजों के एक भले ही न हो पुरातन कथा-साहित्य सबका समान है। सरल व सुबोध भाषा में जन-कथा-साहित्य का उपलब्ध हो ---- सभी के लिए प्रमाणित हुआ। बच्चों, युवा। . . . ें

मे जैन कहानिया पढने की अद्भुत उत्सुकता देखी गई। जो महिलाएँ एक-एक शब्द जोड-जोड कर पढती थी, वे दशो भाग पढने तक हिन्दी धारा-प्रवाह पढने लगी। धार्मिक परीक्षाओ में इनका उपयोग हुआ। विद्यालयो के पुस्तकालयो मे ये व्यापक स्तर पर पहुची। जैन-जैनेतर विद्यार्थी स्पर्धापूर्वक इन्हे पढते। अग्रिम भागो की स्थान-स्थान से माँग आने लगी।

सर्वसाधारण की प्रशस्ति के साथ विचार-जगत् से अनेक सुझाव भी आने लगे। कुछ लोगो ने कहा—पुस्तक-माला का नामकरण जैन कहानियाँ न होकर धार्मिक कहानिया या बोध-कहानियाँ ऐसा कोई नाम होता, तो इसकी व्यापकता सार्वदेशिक हो जाती। कुछेक विचारको ने सुझाया—कहानियाँ वर्गीकृत होनी चाहिए थी। प्रत्येक कहानी का ग्रथ-सदर्भ उसके साथ होना चाहिए था।

नामकरण के परिवर्तन का सुझाव अधिक उपयोगी नही लगा। सार्वजनिक व सार्वदेशिक नाम लेने से ही कोई पुस्तक या कोई प्रवृत्ति सर्वमान्य व व्यापक बन जाती है, यह निरा भ्रम है। दूसरी बात, परम्परागत आधारो पर कथा-साहित्य की अनेक धाराए साहित्य-जगत् मे पहले से ही प्रसारित हो चली है। इस स्थिति मे एक परम्परा-विशेष के कथा-साहित्य को सार्वजनिकता मे विलीन कर देना उस परम्परा के साथ ही न्यायोचित नही होता। ऐसा शक्य भी नही था। नामकरण के बदल देने से कथावस्तु तो बदलती नही। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी कथावस्तु मे अपनी सस्कृति, सभ्यता और परम्परा के मूल्य प्रतिबिम्बित होते है। यह आधार मिटा दिया जाए, तो कथावस्तु ही निराधार व निरर्थक बन जाती है।

अस्तु, इन्ही तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक माला का नाम 'जैन कहानिया' ही अधिक सगत माना गया है।

वर्गीकरण और ग्रथ सबध का सुझाव शोध विद्वानों की ओर से था। सुझाव उपयोगी तो था ही, पर, उसकी भी अपनी सीमा थी। प्रस्तुत पुस्तक माला मुख्यत लोक-साहित्य के रूप मे प्रकाशित हो रही है। अधिक से-अधिक लोग इसे पढें व सात्विक प्रेरणा ग्रहण करें, यह इसका अभिप्रेत है। सब-साधारण को कथा की आत्मा से व उसकी रोचकता से अधिक प्रम होता है, न कि उसके मूल ग्रथ और ग्रथकार से। किसी कथा को पढते ही शोध विद्वान की दृष्टि इस पर पहुँचेगी कि इस कथा का मूल आधार क्या है, वह कितना पुराना है, इस कथावस्तु पर अन्य किसी कथावस्तु का प्रभाव है या नही अन्य परम्पराओं मे यह कथा मिलती है या नही आदि आदि। शोध विद्वान की ये मौलिक जिज्ञासाए सब साधारण के लिए मूल-भुलया है। अस्तु, पुस्तक माला के प्रयोजन को समझते हुए प्रत्येक कथा के साथ गवेषणात्मक टिप्पण जोडना आवश्यक नही माना गया। फिर भी लेखक ने इन अग्रिम भागो की कथाओ में मौलिक आधार अपने प्राक्कथन मे बता दिए है। इससे शोध विद्वानो को प्राथमिक दिग्दर्शन तो मिल ही जायेगा। लेखक की परिकल्पना है इस पुस्तक माला की सम्पूर्ति के पश्चात् समग्र कथाओं के वर्गीकृत रूप का गवेषणात्मक टिप्पणियो के साथ स्वत त्र सस्करण पृथक ग्रथ के रूप म तयार किया जाए।

कथावस्तु की सरसता बढाने के लिए प्रकाशक ने प्रत्येक कथा में घटना सम्बद्ध एक एक चित्र दिया है। चित्रकार ने उन

साधु की मुद्रा लेखक की वेशभूषा मे ही चित्रित की। यह स्वाभाविक भी था। पर, स्थिति यह है कि जैन-साधु की कोई भी एक वेष-भूषा जैन-समाज मे सर्वसम्मत नही है। दिगम्बर मुनि अचेलक है। श्वेताम्बर मुनि वस्त्र-धारक है, पर, उनमे भी दो प्रकार है, मुखपतिबद्ध और अमुखपतिबद्ध। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि अमुखपतिबद्ध है तथा स्थानकवासी और तेरापन्थी; दोनो मुखपतिबद्ध हैं। स्थानकवासियो और तेरापन्थियो मे भी मुखपति के छोटे-बडेपन व आकार-प्रकार का अन्तर है। सहस्राब्दियो पूर्व के जैन-साधुओ का श्वेताम्बर रूप था या दिगम्बर रूप, यह भी अपनी-अपनी मान्यता का विषय है। इस स्थिति मे गौतम, स्थूलिभद्र आदि प्राचीन व सर्वमान्य भिक्षुओ की वेष-भूषा क्या चित्रित की जाए, यह एक जटिल प्रश्न बन जाता है। हाँ, महावीर व अन्य तीर्थकरो के स्वरूप मे सभी जैन-समाज एकमत है। उनकी अचेलक व्यवस्था निर्विवाद है। दसो भाग ज्यो ही प्रकाशित होकर आये और चित्रो मे जहा-जहाँ जैन मुनियो की उपस्थिति आई, वहाँ-वहाँ उनका स्वरूप मुखपतिबद्ध आया। मुखपति भी तेरापन्थी आकार-प्रकार की। लेखक के लिए यह सब सकोच का विषय बना। उनके मन मे तो ऐसा कोई आग्रह था नही। स्थितिवश यह सब हुआ। प्रश्न यह है कि जैन-साधु का कोई भिन्न स्वरूप भी चित्रकार देता, तो क्या देता? कोई सर्वसम्मत रूप है भी तो नही।

लेखक के प्रति अकारण ही कोई सकीर्णता की धारणा बने, यह भी वाछनीय नही था, अत आगामी दस भागो के लिए यही निर्णय लिया गया कि जैन साधु की अनिवार्यता

वाला घटना प्रसग चित्रबद्ध किया ही न जाए। इस निणय से चित्रकार की स्वतन्त्रता में बाधा आएगी। यथाथ व प्रभावपूर्ण घटना को छोडकर उसे साधारण घटना प्रसगों को चित्रबद्धता देनी होगी। इससे पुस्तक व कथावस्तु का आकषण भी न्यून होगा, पर, इसके सिवाय प्रस्तुत समस्या का कोई समाधान भी तो नहीं था।

पूव प्रकाशित भागों के नए सस्करणों में भी यह सशोधन उपादेय हो सकेगा। चालू सस्करणों को तो स्थित-प्रज्ञ पाठक निर्भ्रान्त भाव से पढते रहेंगे, यह आशा है ही।

लेखक की समग्र जन कथा-साहित्य को इसी शृखला में लिख देने की परिकल्पना है। उन्होने अपने लेखन का विषय ही कथा-साहित्य बना लिया है। पश्चिमी लेखको ने इसी प्रकार एक एक विषय पकडकर बडे-बडे साहित्यिक काय कर बताए है। भारतीय लेखक व साहित्यकार शृ खलाबद्ध काय के पर्याप्त आदी नही बने है। अब यह क्रम उनमें आ रहा है यह सन्तोष की बात है। मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' अपने सकल्प को परिपूण कर हिन्दी जगत् को बडी देन देगे व जन-जगत को अनुगृहीत करेंगे, ऐसी आशा है।

तेरापन्थ साधु-सघ लेखकों कवियों एव साहित्यकारों का एक उवर धाम है। अनुशास्ता आचाय श्री तुलसी के निर्देशन म अनेक धारायों मे साहित्यिक काय चल रहा है। इसी का एक उदाहरण मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' की ये कथा-कृतिया है।

१२ दिसम्बर १६७० —मुनि नगराज

प्राक्कथन

मुनिवर मुनिपति अध्यात्म-प्रवण साधक थे। अहर्निश कायोत्सर्ग तथा ध्यान-मुद्रा मे ही वे लीन रहते थे। एक बार उन्होंने कुचिक श्रेष्ठी के यहाँ चातुर्मासिक प्रवास किया। कुचिक श्रेष्ठी तथा उसके पुत्र के बीच सम्पत्ति को लेकर सघर्ष चलता था। श्रेष्ठी ने अपनी सम्पत्ति, जहा मुनिवर का प्रवास था, छुपा दी। पुत्र को ज्ञात हो गया। उसने गुप्त रूप से सम्पत्ति निकाल ली। चातुर्मास की समाप्ति पर श्रेष्ठी ने सम्पत्ति का प्रतिलेखन किया। उसके हाथ कुछ भी नही लगा। वह सदिग्ध हुआ, निर्लोभी मुनिवर लोभ मे फस गये हैं। उनके अतिरिक्त मेरी सम्पत्ति पर कोई नजर नही डाल सकता। उसने मुनिवर मुनिपति को स्पष्ट कह दिया—"आपने अपने उपकारी को धोखा दिया है।" मुनिवर ने इसका प्रतिवाद किया। श्रेष्ठी ने अपने कथन के समर्थन मे अनेक उदाहरण दिये और मुनिवर मुनिपति ने अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए उसके प्रतिवाद मे अनेक उदाहरणो का प्रयोग किया। कथन-प्रतिकथन की शृ खला बहुत लम्बी व सरस चली है। कथाओ का सयोजन तथा कथोपकथन की कलात्मकता अद्भुत है। इसीलिए यह आख्यान अनेक कवियो द्वारा सस्कृत, गुज-

राती राजस्थानी आदि भाषाओं में विविध रूप में सवृद्ध हुआ है।

राजा श्रेणिक के अनेक प्रसंग एक ही शृंखला में आबद्ध होकर जैन इतिहास की कई महत्वपूर्ण घटनाओं पर सुन्दर प्रकाश डालते हैं। अनेक कथाएँ स्वतन्त्र होती हुई भी संयोजक की कुशलता से चामत्कारिक रूप से एक हो गई हैं। प्रवाह अस्खलित होकर चलता है तथा उसमें अनेक मनोरंजक घुमाव आते हैं। साराश है अध्यात्मक का प्रतिष्ठापन।

कुछ कथाएँ प्रस्तुत संग्रह (भाग १८-१६) से पृथक कर दी गई हैं। उनमें मुनि मेतार्य तथा राजा जितशत्रु व रानी सुकुमाला मुख्य हैं। वे पूर्व भागों में आ चुकी हैं। 'अतुकारी भट्टा' को पृथक कर दिये जाने पर भी सोलहवें भाग में संयुक्त कर दिया गया है।

जैन कथाओं के आलेखन का क्रम विगत एक दशाब्दी से चल रहा है। अनचाहे ही यह लेखन का मुख्य विषय बन गया है और क्रमशः अनेकानेक कथाएँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रान्तीय भाषाओं से रूपान्तरित होकर एक शृंखला में सबद्ध होने लगी। कथाओं का पठन तथा श्रवण सर्वाधिक प्रिय था ही पर लेखन भी इनके साथ अनुस्यूत हो जायेगा, यह कल्पना नहीं थी। किन्तु अनायास हो गया और उससे मानसिक प्रसत्ति का एक सुन्दर स्रोत फूट पड़ा। इस बीच प्राचीन आचार्यों के अनेकानेक कथा संग्रह के ग्रंथ देखे और उनसे कथाओं का चयन आरम्भ किया। संक्षिप्त व विस्तृत दोनों शैलियों से लिखे गये ग्रंथों के स्वाध्याय से कथा-वस्तु की जान-

कारी मे पर्याप्त योग मिला, पर, उसकी विविधता ने उतनी ही जटिलता प्रस्तुत कर दी। एक ही कथा के अनेक रूप निर्णायकता मे कठिनता उपस्थित कर रहे थे। अपनी मनीषा से ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचकर आलेखन का प्रयत्न किया गया है। हो सकता है, बहुत सारे स्थलो पर मत-भिन्नता तथा परम्परा की भिन्नता भी हो, पर, सर्वसम्मतता के अभाव में एक ही प्रकार की कथा का ग्रहण आवश्यक भी था। जहाँ तक स्वय की मान्यताओ का प्रश्न था, बहुत सारे स्थलो पर उनका आग्रह न रखकर कथा-वस्तु को ज्यो-का-त्यो रखा गया है, ताकि तात्कालीन परिस्थितियो के बारे मे पाठक अपना निर्णय कर सके। मैंने अपना निर्णय पाठको पर थोपने का यत्न नही किया है। बहुत सारे स्थलो पर कथा-वस्तु में तनिक-सा परिवर्तन कर देने पर विशेष रोचकता भी हो सकती थी, किन्तु, प्राचीन कथाओ की मौलिकता को बनाये रखने के लिए ऐसा भी नही किया गया है।

जैन कथा साहित्य जितना विस्तीर्ण है, उतना ही सरस भी है। आज तक वह आधुनिक भाषा मे नही आया था, अत वह अपरिचित भी रहा। मुझे यह अनुमान नही था कि पच्चीस लिखे जाने के बाद भी उसकी थाह अज्ञात ही रहेगी। ऐसा लगता है, जैन कथा-साहित्य के छोर को पाने मे अनेक वर्षो की अनवरत तपस्या आवश्यक है। आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि मे कथाओ का विपुल भण्डार है। रास साहित्य ने उसमें विशेषत और ही अभिवृद्धि की है। ज्यो-ज्यों गहराई पहुँचा जायेगा, त्यो-त्यो विशिष्ट प्राप्ति भी होती जायेगी

और गहराई में डुबने के लिए उत्साह भी वृद्धिगत होता जायेगा।

मुझे प्रसन्नता है कि इन कहानियों का समाज के सभी वर्गों में विशेष समादर हुआ। कहना चाहिए उसी कारण इस दिशा में निरन्तर लिखते रहने का उत्साह पाया। आरम्भ में योजना छोटी थी, पर अब वह स्वतः काफी विस्तीर्ण हो चुकी है। पहली बार में दस भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए थे और दूसरी बार लगभग पन्द्रह भाग प्रस्तुत हो रहे हैं। इसी क्रम से बढ़ते हुए शीघ्र ही सौ भागों की अपनी मंजिल तक पहुंचना है। भगवान श्री महावीर के २५वें शताब्दी समारोह तक यदि यह कार्य सम्पन्न हो सका तो विशेष आह्लाद का निमित्त होगा।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के वरद आशीर्वाद ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवृत्त किया और अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराजजी डी० लिट० के मार्ग-दर्शन ने उसमें गतिशील किया। जीवन की ये दोनों ही अमूल्य बातें हैं। मुनि विनयकुमारजी 'आलोक' तथा मुनि अभयकुमार का सतत सहायक-सहयोग लेखन में निमित्त रहा है।

१२ नवम्बर, ७० —मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

मुनिवर मुनिपति

अंग देश मे मुनिपतिक नामक नगर था। विक्रम व न्याय मे अग्रणी मुनिपति वहाँ का राजा था। पटरानी का नाम पृथ्वी और राजकुमार का नाम मुनिचन्द्र था।

एक दिन राजा मुनिपति राजमहलो मे बैठा आमोद-प्रमोद कर रहा था। महारानी पृथ्वी राजा के केशों को सहला रही थी। एक श्वेत केश को देखकर विनोद से वह बोल पडी—"स्वामिन्, चोर आ गया है।"

राजा चौका और चारो ओर देखने लगा। उसे चोर दिखाई नही दिया। महारानी से उसने प्रश्न किया—"कहाँ है चोर ?"

महारानी ने सफेद केश को राजा के सिर से उखाडा और दिखलाते हुए कहा—"देखिये, बुढापे के द्वारा भेजा गया यह चोर है।"

राजा अन्तर्मुख हुआ। वह सोचने लगा, यौवन

ढल चुका है और मैं अब तक भी कामनाओं से जकड़ा हुआ गृहवास में बैठा हूँ ? राज्य, वैभव व परिवार बन्धन के सूचक हैं । इनके बीच बहुत लम्बी अवधि तक बैठा रहा । अब मुझे इससे पराङ्मुख होना चाहिए । वार्धक्य में शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है । साधना के मार्ग में अग्रसर होने के लिए आत्म-बल के साथ-साथ देह-बल भी चाहिए । जो बीत चुका, वह तो गया, पर, जो अब तक बचा हुआ है, उसका संरक्षण तो कर ही लेना चाहिए । राजा ने अपने निश्चय से तत्काल महारानी को सूचित किया । महारानी पृथ्वी ने उस विचार का केवल अनुमोदन ही नहीं किया, अपितु शीघ्रता के लिए आग्रह भी किया । राजा मुनिपति ने राजकुमार मुनिचन्द्र को राज्य का दायित्व सौंप दिया । स्वयं विरक्त जीवन जीने लगा ।

शुभ मनोभावना के फलित होने में कई बार निमित्त की प्राप्ति भी अतिशीघ्र ही हो जाती है । राजा के विरक्त होते ही उद्यान में आचार्य धर्मघोष का शुभागमन हुआ । सूचना पाकर राजा के हर्ष का पार न रहा । वह अपने पूरे परिवार के साथ वन्दना के लिए गया । आचार्य धर्मघोष ने हृदयस्पर्शी उपदेश दिया । राजा वैराग्य से भावित तो था ही, उपदेश-

श्रवण से उसकी भावना का वेग और बढ़ा। उसने विचारो को क्रियान्वित करने की दिशा मे कदम बढाया। प्रव्रजित होकर आचार्य धर्मघोप के उपपात मे ज्ञान और चारित्र की आराधना मे लीन हो गया। तपस्या व ध्यान के अवलम्बन से साधना निखर उठी। गीतार्थ व अनेक लब्धि-सम्पन्न होकर मुनि मुनिपति आचार्य की अनुमति से अकेले विहरण करने लगे।

साधु-जीवन कष्टों व परीक्षाओ का जीवन होता है। पर, आत्म-तत्त्व का गवेपक कष्टो को सुख की भूमिका मानता है। मुनि मुनिपति एकाकी विचरते हुए एक बार शीत ऋतु में अवती नगर के बहिर्वर्ती उद्यान में पहुँचे। ठिठुरती हुई सर्दी तथा शरीर को चीर डालने वाली तेज हवा मे मुनि मुनिपति उद्यान के एक कोने मे रात्रि के समय अडोल ध्यान-मग्न हो गये। शरीर की वेदना को वे सर्वथा नगण्य समझ रहे थे। आत्म-भावना की गहरी भूमिका पर वे विचरण कर रहे थे। उसी समय कुछ गोपाल-बालक गौओ को चराकर वन से लौट रहे थे। उन्होने मुनि मुनिपति को वहा देखा। उन्होने सोचा, सर्दी की प्रचुरता से सभव है, मुनिवर ठिठुर रहे है। उन्होने अपने कपडो से मुनिपति को चारो ओर से ढक दिया। उनका यह

भी चिन्तन था, जब प्रात कुछ धूप चढेगी, हम यहाँ आकर अपने-अपने कपडो को ले लेंगे। गोपाल-बालक अपने-अपने घर चले गये।

उसी नगर में बोधिभट्ट नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह धनी, लोकप्रिय तथा दयालु था। खेती-बाडी का उसके बहुत बडा धधा था। बोधिभट्ट तिलों का प्रमुख व्यापारी था, इसलिए उसका तिलभट्ट नाम भी विश्रुत था। उसकी पत्नी का नाम धनश्री था। वह बोधिभट्ट से सर्वथा प्रतिकूल प्रवृत्ति की थी। वह कुटिल, दु शील तथा निर्दय थी। बोधिभट्ट से यह सब कुछ अज्ञात था। वह तो अपनी पत्नी को बहुत बडी सती-साध्वी मानता था।

धनश्री ने एक बार बोधिभट्ट द्वारा सगृहीत तिल प्रच्छन्न रूप से बेच डाले। उसे अपने खर्च के लिए गुप्त धन की आवश्यकता थी। एक दिन उसके मन में विचार उभरा, यदि पति ने इसके बारे मे कुछ भी पूछा तो क्या उत्तर दिया जायेगा। अपने पाप को छुपाने के लिए उसने एक षड्यन्त्र रचा। कृष्ण-चतुर्दशी का दिन था। दो प्रहर रात्रि बीत चुकी थी। घर से चलकर वह नगर के बाहर उसी स्थान पर पहुँची, जहाँ कि मुनिवर मुनिपति ध्यानस्थ खडे थे। अंधेरा

था, अत: उसे कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। उसने पहने हुए वस्त्र वहाँ उतार दिए। पक्षियो के पंखो से सारे शरीर को लपेटा। कज्जल से मुख को काला किया। एक शराव में खदिर के अंगारे भरे। केश बिखेर दिए। शाकिनी की तरह वहाँ से चली। एक हाथ मे अंगारो से भरा शराव था और दूसरे हाथ में तीक्ष्ण छुरी थी। तेज गति से चलती हुई वह तिलभट्ट (बोधिभट्ट) के पास आई। तिलभट्ट उसके बीभत्स रूप को देखकर कापने लगा। बीच-बीच में जब वह फूँक देकर अंगारों को प्रज्ज्वलित करती थी, तिलभट्ट सिहर उठता था। वह बार-बार बोल रही थी—"तिलो को खाऊँ या तिलभट्ट को ?" तिलभट्ट सोचने लगा, अनालोचित ही यह आपदाओं का पहाड़ कहा से आ पडा ?

भयभीत पर धमकियों का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है। आगन्तुक शाकिनी ने उसे डांटते हुए पुनः कहा—"पापात्मन् ! मै बहुत समय से तेरी खोज में थी। आज तू मेरे हाथ चढ़ा है। तुझे मारे बिना नही छोड़ूँगी। अपने इष्ट का स्मरण कर ले। तुझे बचा सकने वाला अब कोई नही है।"

तिलभट्ट काँपने लगा और अपने बचाव के लिए

विलमडु भागने लगा और अपने बचाव के लिए प्रयत्न करने लगा।
उसने अपना चारों ओर दृष्टि डाली। उसे कोई नज़र नहीं आया।

प्रयत्न करने लगा । उसने चारो ओर दृष्टि डाली । उसे कोई नजर नही आया । वह आगन्तुक शाकिनी के पैरों मे गिर पडा । घबराते हुए स्वर में बोला—"देवि ! मै दीन हूँ, असमर्थ हूँ और तेरा दास हूँ । तुम मेरे पर कृपा करो । जैसा तुम्हारा आदेश होगा । कार्य करूँगा । मेरा जीवन अब तुम्हारे हाथो मे है । मै चाहता हूँ, तुम मेरा सरक्षण करो ।"

शाकिनी ने लाल आँखे करते हुए कहा—"क्या तू मुझे नही पहचानता है ? मै जगद्-विख्यात तिल-भक्षिणी देवी हूँ । यदि तुझे अपना जीवन प्रिय है, तो तेरे द्वारा तिलो का जितना भी सग्रह किया गया है, वह सारा मुझे भेट कर दे । इसके अतिरिक्त तेरे बचाव का कोई मार्ग नही है । यदि तुझे तिलो का सग्रह प्रिय है और उसका सरक्षण चाहता है, तो अपने जीवन को समाप्त करने के लिए तत्पर हो जा । मै किसी भी प्रकार दोनो मे से एक को छोडने वाली नही हूँ ।"

जब मौत का कहा जाता है, तो व्यक्ति बीमारी के प्रस्ताव को स्वीकार करता है । तिलभट्ट ने कापते स्वर मे कहा—"आपका अनुग्रह हो जाये, तो मेरे जीवन की रक्षा हो जाये । तिलो से मुझे कोई प्रयोजन नही

हैं। मैं इन्हें आपको भेंट करता हूँ। आपकी कृपा होगी, तो तिल तो और बहुत मिल जायेंगे।"

आगन्तुक शाकिनी ने डाटते हुए कहा—"संगृहीत तिलों के बारे में अब किसी से भी कुछ न पूछना और न कहना। मैंने उनका संहरण कर लिया है। तू शान्त हो जा। तुझे कोई भी खतरा नहीं है। स्वस्थ होकर अपने घर जा।"

सब कार्यों को अच्छी तरह सम्पन्न कर वह उसी स्थान पर आई जहाँ कि उसने अपने वस्त्र उतारे थे। पानी से स्नान कर उसने अपनी कालिमा को उतारा और कपड़े पहने। संयोग की बात थी, पास ही में श्मशान था। एक शव की अन्तिम क्रिया करके कुछ व्यक्ति लौटे थे। अंगारे जल रहे थे। हवा के झोंके से एक पूला उन अंगारों पर आ गिरा। वह जला, तो अचानक प्रकाश हुआ। धनश्री ने उस प्रकाश में ध्यानस्थ खड़े मुनिपति मुनि को देखा। उसका पाप उसको कचोटने लगा। उसने सोचा, मेरा सारा चरित्र सम्भव है, इस मुनि ने देख लिया होगा। कहीं यह समाज में मेरा भंडाफोड़ कर देगा तो ? इसी एक आशंका ने उसे पुनः एक महान् पाप करने के लिए उद्यत कर दिया। तत्काल वह जलते हुए अंगारों को

लाई और उसने उन्हे मुनि के सिर पर डाल दिया। इतना क्रूर कार्य करते हुए भी उसके पाँव नही ठिठके। वह वहाँ से चली और घर पहुँच गई।

आग ने वस्त्रों को जला डाला। उसके ताप से मुनिवर मुनिपति का शरीर झुलस गया। मुनि खड़े नही रह सके। उनका शरीर भूमि पर गिर पडा। मुनि मुनिपति अपनी समता मे लीन थे। व्याधि ने उनके शरीर को व्यथित किया, पर, आत्मा को पीडित न कर सकी। उनके मन मे किसी के प्रति भी कोई रोष नही उभरा।

बोधिभट्ट घर पहुँचा। जब-जब उसके मन में उस घटना का स्मरण होता, वह सिहर उठता। धनश्री से उसने कहा—"आज तो मैं वनदेवी के द्वारा छला गया। मेरा जी घबरा रहा है। बिछौना बिछाओ। मेरा तो कलेजा फटा जा रहा है।" धनश्री ने तत्काल बिछौना लगाया। बोधिभट्ट सोया, पर, दाह ज्वर ने उसे घेर लिया। प्रकोप बढ़ता गया और कुछ ही घंटों में उसका शरीर सदा के लिए शान्त हो गया।

पाप कितना ही छुपकर किया जाये, उसकी कलई खुले बिना नही रहती। धनश्री का पापाचार प्रकट हो गया। जनता में उसकी खुली निन्दा हुई। स उ

ने उसे नगर से बहिष्कृत कर दिया। उसकी बुरी आदतें फिर भी छूट न पाई। उसने और भी बहुत सारे पाप किए। उसका अन्तिम जीवन बहुत ही घृणित तथा तिरस्कृत रहा। वह भी देह का त्याग कर नरक में गई।

प्रात:काल का जब समय हुआ, तो गोपाल-बालक अपने-अपने वस्त्र लेने के लिए मुनिवर मुनिपति के पास आये। उन्होंने मुनिवर को दग्ध देखा, तो उनका हृदय करुणा से भर आया। उनका सहसा स्वर निकला—"हम महापापी हैं। हमने लाभ की कल्पना की थी, पर, मूल में ही हानि हो गई। हमें क्या पता था, हमारे कपड़े मुनिवर के झुलसने में निमित्त बन जायेंगे।" उन्होंने समय को यों ही नहीं गुजारा। सभी मिलकर द्रुत गति से नगर में कुचिक श्रेष्ठी के घर आये।

श्रेष्ठी कुचिक प्रसिद्ध श्रमणोपासक था। नगर के समस्त जैन मन्दिरों की कली-कूची करने वाले श्रमिक उसी के घर रहते थे, इसीलिए वह 'कुचिक' के नाम से विश्रुत था। गोपाल-बालकों ने मुनिवर के जलने का सारा उदन्त सेठ को सुनाया। सेठ बहुत खिन्न हुआ। बालकों के साथ वह नगर के बाहर मुनिवर के

पास आया। मुनिवर बेहोश थे। मुनिवर को सुखासन मे स्थापित कर सेठ अपने घर ले आया। उन्हे एकान्त मे स्थापित किया। उनके उपचार की आवश्यकता थी। उसने अन्य साधुओ को इसकी सूचना दी। साधु परिचर्या के लिए सन्नद्ध हुए। सेठ से उन्होने औषधि के बारे मे पूछा। सेठ ने कहा—"अन्य औषधियाँ तो मेरे घर मिल जायेगी, पर, लक्षपाक तेल नही मिल सकेगा, अत आप 'अतूकारी भट्टा' के घर से उसे ले आये।"

साधर्मिक साधु की परिचर्या साधना का ही एक विशिष्ट अग है। तत्काल दो साधु 'अतूकारी भट्टा'[१] के घर गये और तेल ले आये। उस तेल के प्रयोग से क्रमश. मुनि मुनिपति स्वस्थ हो गये। मुनि ने सेठ को धर्मोपदेश दिया और विहार करने के लिए उद्यत हुए। मुनि मुनिपति और श्रेष्ठी कुचिक का निकट सम्पर्क हो गया था। चातुर्मास का समय निकट था। मुनिवर जब विहार करने लगे, तो सेठ ने भाव-भीनी प्रार्थना की। मुनिपति ने उसे स्वीकार कर लिया। मुनिवर सेठ के घर के समीप ही एक

---

१ विस्तार के लिए देखे, 'अतूकारी भट्टा' कथा।

धरती खिसक गई । सेठ ने अपने दिमाग को दौडाया । सोचने लगा, इस धन को किसने लिया होगा ? उत्तर मिला, मुनि मुनिपति के अतिरिक्त तो इस भेद को कोई जान नही सकता । सम्भव है, निर्लोभ भाव मे विहरण करने वाले मुनिराज का मन भी लोभ से भर गया हो । उसने मुनिवर से स्पष्ट शब्दो में कहा—"सेचनक हाथी की तरह कृतघ्नी होकर आपने तो मेरा धन हडप लिया है ।"

अप्रत्याशित बात को सुनकर मुनि मुनिपति एक बार चौंके । फिर भी उन्होने अपनी भावना का सवरण करते हुए पूछा—"सेठ ! सेचनक हाथी कौन था और उसने क्या कृतघ्नता की थी ?"

सेठ ने कहा—"गंगा के तट पर हाथियो का एक यूथ रहता था । यूथपति एक बलिष्ठ हाथी था । उसकी भोगेच्छा बहुत प्रबल थी, इसलिए वह कलभो को मार डालता था और हथिनियो का सरक्षण करता था । एक हथिनी उसके इस अभिप्राय को समझ गई । जब वह आसन्न-प्रसवा हुई, यूथ को छोडकर तपस्वियो के किसी आश्रम मे चली गई । प्रच्छन्न रूप से उसने वहाँ एक कलभ को जन्म दिया । क्रमश. बढता हुआ वह कलभ आश्रम मे नाना क्रीडाएँ करने लगा । सूड

में पानी भर कर आश्रम के वृक्षों को सींचना उसे बहुत पसन्द था, अत उसका नामकरण सेचनक हो गया।

किशोर युवक हो जाते है, तो युवक वृद्ध भी हो जाते है। बलवानों का बल भी एक अवधि के बाद क्षीण होने लगता है। यूथपति हाथी वृद्ध हो चुका था, अत उसका बल क्षीण हो गया। सेचनक यौवन में था, अत उसका बल वृद्धि पर था। सेचनक ने एक दिन अवसर देख, अपने पिता यूथपति को मार डाला। स्वय यूथपति बन गया।

अनागत की आशका बहुधा व्यक्ति को विचलित कर देती है। सेचनक ने सोचा, जिस प्रकार आश्रम में मेरा गुप्त जन्म और पालन-पोषण हुआ है, सभवत अन्य भी कोई हथिनी यहाँ आकर किसी को जन्म दे और वह आगे चलकर मुझे मार डाले। अच्छा हो, इस आश्रम को ही समाप्त कर दिया जाये। उसने तत्काल आश्रम को उजाड दिया। अपने उपकारी तपस्वियो की ओर उसने तनिक भी नही सोचा।

कृणिक सेठ ने अपनी बात को मोड देते हुए कहा--"मुने ! मैंने आपको चातुर्मास के लिए आश्रय दिया और आपने मेरे धन का अपहरण किया ? यह उप-

युक्त नही किया। आपकी इस प्रवृत्ति पर मुझे एक दूसरा उदाहरण और याद आता है। आपने मेरे साथ कृष्णपाक्षिक मन्त्री की तरह व्यवहार किया है। मेरा कलेजा मुँह की ओर आ रहा है।"

मुनि मुनिपति अपनी साधना मे सजग थे। उन्होने कोई स्खलना नही की थी। फिर भी सेठ द्वारा पुनः-पुन एक ही बात सुनकर उनके असमजस होना स्वाभाविक था। उन्होने पूछा—"सेठ ! कृष्णपाक्षिक मन्त्री कौन था ? उसने वचना का क्या व्यवहार किया था ? तुम उसके साथ मेरी समानता कैसे कर रहे हो ?"

सेठ ने कहा—"मुनिवर ! सुने। पृथ्वी भूषण नगर में शुक्लपक्ष नामक राजा राज्य कर रहा था। शुभपरिणामा उसकी पटरानी का नाम था। उसके मन्त्री का नाम कृष्णपाक्षिक था। वह निर्दय, क्रूर, वचक और धूर्त था। एक दिन उस नगर मे विदेश से एक व्यापारी आया। उसने राजा को एक घोड़ा भेट किया। घोडा वक्रगामी था। राजा ने उसकी परीक्षा करने की सोची। वह सवार होकर जगल की ओर चला। घोडा तीव्र गति से चलता हुआ विजन अरण्य मे पहुँच गया। राजा क्लान्त हो गया। घोड़ा भी

सिसकने लगा। उस पर थकान का इतना प्रभाव हुआ कि वह सदा के लिए चिर निद्रा में सो गया।

भूख प्यास से पीड़ित राजा जंगल में चारों ओर घूमने लगा। किसी सरोवर पर पहुँच कर उसने प्यास बुझाई और फल-फूल खाकर भूख शान्त की। कुछ समय आश्वस्त होने के बाद वह चहल-कदमी करने लगा। उसे एक तापस मिला। उसने उसे नमस्कार किया और तापस ने उसे आशीर्वाद दिया। कुछ ही क्षणों में दोनों में आत्मीयता बढ़ गई। तापस राजा को अपने आश्रम में ले आया।

किसी अद्भुत वस्तु को देखकर बहुधा व्यक्ति शीघ्र ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। राजा ने वहाँ एक कन्या को देखा। वह सौन्दर्य और सौभाग्य में अप्रतिम थी। निमेष मात्र में ही राजा उससे आकृष्ट हो गया। कन्या ने भी जब राजा को देखा, तो उस पर भी अनुकूल प्रतिक्रिया हुई। उसका हृदय भी उसकी ओर खिंच गया। राजा पुनः-पुनः कन्या की ओर देखने लगा। तापस ने उसके अभिप्राय को भाँप लिया। उसने पूछा—'मित्र ! क्या देख रहे हो ? इतनी उत्सुकता किसके प्रति है ?"

राजा ने अपने अभिप्राय को झुठलाने का प्रयत्न

उसका हृदय भी उसकी ओर खिंच गया। राजा पुन-पुन कन्या की ओर देखने लगा। तापस ने उसके अभिप्राय को भांप लिया। उसने पूछा—"मित्र! क्या देख रहे हो? इतनी उत्सुकता किसके प्रति है?"

नही किया। स्पष्टता से उसने कन्या की ओर संकेत करते हुए उससे पूछा—"ऋषिवर ! यह कन्या किसकी है ? यह यहाँ क्यो रह रही है ? यह विवाहिता है या कुमारी ?"

तापस ने स्मित हास्य के साथ कहा—"राजन् ! इसका इतिहास लम्बा है। जब तुमने पूछ ही लिया है, तो सुनो। विवेकाद्रि पर्वत पर धमसेन विद्याधर राजा है। उसकी यह निवृत्ति नामक कन्या है। निवृत्ति एक दिन राजमहल की ऊपरी मंजिल के गवाक्ष में बैठी थी। आकाश-मार्ग से एक विद्याधर जा रहा था। जिस प्रकार तेरी दृष्टि इस पर अटक गई, उसी प्रकार उसकी भी। उसने उसी समय इसका अपहरण कर लिया। कन्या के चिल्लाने पर विद्याधर धमसेन ने उसका पीछा किया। अपहर्ता विद्याधर कमजोर था। सबल को अपने पीछे आते देखकर उसने अपने प्राण बचाने का प्रयत्न किया। कन्या को उसने तत्काल भूमि पर छोड दिया और स्वय कही दौड गया। धमसेन ने निवृत्ति को अपने अधीन किया। उसका मन उबल रहा था, अत उसने उसका पीछा करना चाहा। यह आश्रम पास मे था, अत कन्या को यहाँ छोड कर वह उसी शत्रु विद्याधर को परा-

गायी करने के लिए गया है ।"

तापस ने आगे कहा—"जाते हुए धर्मसेन ने मुझ से कहा था कि यदि शीघ्र ही लौट आऊँगा, तो कन्या को अपने साथ ले जाऊँगा । यदि न पहुँच पाऊँ, तो पर-काय-प्रवेश विद्या मे निष्णात किसी योग्य पुरुष के साथ इसका विवाह कर देना ।"

धर्मसेन को गये काफी लम्बा समय बीत गया है। वह वापस नही आया है ।

निवृत्ति के कौमार्य की बात से राजा को प्रसन्नता हुई; किन्तु, पर-काय-प्रवेश विद्या से वह अनभिज्ञ था; अत. खिन्नता भी हुई । तापस ने उसकी खिन्नता को ताड लिया । उसने बीच का मार्ग सुझाते हुए कहा— "राजन् ! तुम इस कन्या के साथ विवाह कर सकते हो; पर, जब तक पर-काय-प्रवेश विद्या में निष्णात न हो जाओ, कन्या को अपने अन्त:पुर में स्थापित न करना ।"

राजा शुक्लपक्ष ने तापस के आदेश को शिरो-धार्य कर लिया । तत्काल वहाँ दोनों का विवाह हो गया । कुछ ही समय बाद राजा का परिकर भी वहाँ पहुँच गया । नई रानी को देखकर सभी को विशेष प्रसन्नता हुई । राजा अपने नगर की ओर चला ।

तापस ने पुन प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया। राजा ने तापस को दृढ़ता पूर्वक उसका विश्वास दिलाया।

रानी निवृत्ति को राजा शहर में नहीं ले गया। उसका आवास उद्यान के राजमहलों मे किया गया। महोत्सव-पूर्वक राजा ने शहर मे प्रवेश किया।

राजा पर काय प्रवेश विद्या से सर्वथा अनभिज्ञ था। उसे यह भी ज्ञात नहीं था कि यह विद्या कहाँ से प्राप्त की जा सकेगी। राजा ने एक दिन मन्त्री से इस बारे में मन्त्रणा की। मन्त्री ने एक प्रस्ताव रखा, आप एक दानशाला की स्थापना करें। भिक्षा लेने के लिए वहाँ बहुत सारे विद्यासिद्ध योगी आयेंगे। हम सूक्ष्मता से उन योगियों को परखेंगे। सम्भव है, उनमें से किसी से इस विद्या का रहस्य हाथ लग जाये।

प्रस्ताव राजा को उचित लगा। उसे तत्काल क्रियान्वित किया गया। विशाल पैमाने पर दानशाला आरम्भ की गई। प्रतिदिन सैंकड़ों योगी भिक्षा के लिए वहाँ आने लगे। सूक्ष्मता से निरीक्षण करने के बावजूद भी पर काय-प्रवेश विद्या का रहस्य हाथ नहीं लग सका।

छ महीने बीत गये। [illegible] दिन एक कापटिक वहाँ आया। [illegible] लगा। उसके

समक्ष मत्री ने उक्त चर्चा करते हुए कहा—"सुदूर प्रदेशो मे भ्रमण करते हुए इस विद्या मे निष्णात योगी कोई आपको मिला या नही ?"

आगन्तुक कार्पटिक ने कुछ क्षण सोच कर कहा—"मत्रिवर ! निश्चित ही मैने एक ऐसा योगी देखा है। किन्तु, उसके पास पहुच पाना अत्यन्त कठिन है।"

मत्री ने विनम्रता से कहा—"आपने जब इतना प्रकाश डाला है, तो आगे की विधियो पर भी सकेत प्रदान करेंगे। कष्टो को झेलना हमारे लिए सुगम है। हम तो अपने काम की सिद्धि चाहते है।"

कार्पटिक मत्री के व्यवहार से बहुत सतुष्ट हुआ। उसने कहा—"मेरे नगर से बारह योजन भूमि लाँघने पर एक महावन आयेगा। उसके प्रवेश-मार्ग पर दो ताड वृक्ष है। एक वृक्ष पर कभी-कभी कौआ बैठता है तथा दूसरे पर कभी-कभी हस। यदि वहाँ कौआ दिखलाई दे, आगे प्रस्थान न करना। यदि हस-दर्शन हो, तो उस महावन मे प्रवेश करना। ज्यो ही उस महावन को पार करोगे, लोकाग्र नामक एक पर्वत आयेगा। उसके उत्तुग शिखर पर सदानन्द योगी सर्वदा पद्मासन मे विराजमान रहते है। वे पर-काय-प्रवेश विद्या मे निष्णात है। यदि उनका अनुग्रह हो

जाये, तो आपको यह विद्या प्राप्त हो सकती है।"

रहस्य हाथ लग जाने पर मंत्री को प्रसन्नता स्वाभाविक थी। उसने राजा से सारी घटना निवेदित की। राजा को भी हर्ष हुआ। किन्तु, उसने मंत्री से एक प्रश्न पूछा—"यह तो बतलाओ, कापटिक का नगर कौन-सा है? जब तक यह ज्ञात नहीं हो सकेगा, हम कैसे पहुंच पायेंगे?"

मंत्री ने कापटिक को राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा द्वारा उक्त प्रश्न पूछे जाने पर आगन्तुक कापटिक ने कहा—"राजन्! आपके देश की सीमा लाँघने पर बारह ग्राम, नौ महानगर तथा पांच पत्तन आयेंगे।"

राजा सब कुछ समझ गया। उसने कापटिक को ससम्मान विसर्जित किया। प्रस्थान की सारी सामग्री मयोजित कर राजा ने रानी निवृत्ति को भी हर्ष-संवाद दिया। रानी निवृत्ति बहुत चतुर थी। उसने तत्काल राजा से निवेदन किया—"आप सानन्द प्रयाण करें और सफलता प्राप्त कर शीघ्र ही लौटें। किन्तु, अपने मंत्री का किसी भी परिस्थिति में साथ न लें। वह द्रोही है, कृतघ्नी है और पिशुन है। यदि इसे साथ ले जायेंगे, तो जीवन संकट में पड़ जायेगा। आपका

इच्छित फलित नही हो सकेगा।"

रानी की बात मे राजा को भी यथार्थता लगी, अतः उसने उसे स्वीकार कर लिया। पाथेय लेकर राजा दृढ निष्ठा से चल पडा। मंत्री के लिए भी यह स्वर्णिम अवसर था। वह उसे ऐसे ही कैसे गंवा देता? राजा के शरीर की छाया की तरह वह भी साथ चल पडा। राजा ने उसे बहुत निषेध किया, पर, वह नही माना। राजा को रानी का कथन याद था, किन्तु, भावी को कौन टाल सकता है? सरल आशय राजा ने उसे भी साथ ले लिया।

राजा और मंत्री अनवरत चल रहे थे। मंजिल की निकटता के समक्ष उन्हें थकान का भी अनुभव नही हो रहा था। उन्होने सात सौ योजनो का मार्ग लांघ दिया। उनके देश की सीमा समाप्त हो गई। उसके बाद उन्होने संकेतित बारह गाँव, नौ नगर और पाँच पत्तन भी लाँघ दिए। महाअटवी आई। उन्होंने उसके मुहाने पर दो ताड वृक्ष देखे। सफलता उनकी प्रतीक्षा कर रही थी; अतः वहाँ हंस-दर्शन ही हुए। क्षणो में महावन का अवगाहन हो गया। उत्तुग पर्वत, शिखर पर पहुँचे। दूर से ही उन्हे योगी सदानन्द के दर्शन हुए। भव्य ललाट, तेजोमय नेत्र, दिव्य ि

योगी ध्यान-मग्न थे। दोनों ही विनत भाव से वहाँ बैठ गये। योगी ने ध्यान सम्पन्न किया, आँखें खोलीं किन्तु उनका कोई आतिथ्य नहीं किया।

और अद्भुत शान्ति का वहाँ साम्राज्य, राजा और मत्री अपलक निहारते रहे। वे पास आये। योगी ध्यान-मग्न थे। दोनो ही विनत भाव से वहा बैठ गये। योगी ने ध्यान सम्पन्न किया, आखे खोली, किन्तु, उनका कोई आतिथ्य नही किया। वह अपनी ही धुन मे रमा हुआ था। कुछ दिन वे दोनो ही तन-मन से योगी की सेवा करते रहे।

सेवा कभी निष्फल नही जाती। वह अपना रग लाती ही है। योगी सेवा के माध्यम से उनके दृढ मनोयोग का परीक्षण करना चाहता था। उसमे राजा उत्तीर्ण हुआ। योगी ने एक दिन राजा को कहा—"मै तेरे पर प्रसन्न हूँ। वरदान माँगने के लिए मै तुझे प्रेरित करता हूँ।"

राजा की बाछे खिल उठी। उसका परिश्रम आकार ले रहा था। उसने विनम्र स्वरो मे निवेदन किया—"भगवन्! आपके अनुग्रह का प्यासा यहां तक खिचा आया हूँ। वह मुझे प्राप्त हो गया है। मेरी अभिलाषा है, मैं पर-काय-प्रवेश विद्या की साधना करूँ। प्रभो! आपका मार्ग-दर्शन मेरे लिए परम आवश्यक है।"

योगी ने राजा के निवेदन को स्वीकार कर लिया।

बाबा ध्यान-मग्न थे। राजा ही विनय भाव से बहुत बैठ गए। बाबा ने उनका
सम्मान किया, अतः बाबा संविद उसका भाई ... किया।

और अद्‌भुत शान्ति का वहाँ साम्राज्य, राजा और मत्री अपलक निहारते रहे। वे पास आये। योगी ध्यान-मग्न थे। दोनो ही विनत भाव से वहा बैठ गये। योगी ने ध्यान सम्पन्न किया, आखे खोली, किन्तु, उनका कोई आतिथ्य नही किया। वह अपनी ही धुन में रमा हुआ था। कुछ दिन वे दोनो ही तन-मन से योगी की सेवा करते रहे।

सेवा कभी निष्फल नही जाती। वह अपना रग लाती ही है। योगी सेवा के माध्यम से उनके दृढ मनोयोग का परीक्षण करना चाहता था। उसमे राजा उत्तीर्ण हुआ। योगी ने एक दिन राजा को कहा—"मैं तेरे पर प्रसन्न हूँ। वरदान माँगने के लिए मैं तुझे प्रेरित करता हूँ।"

राजा की वाछे खिल उठी। उसका परिश्रम आकार ले रहा था। उसने विनम्र स्वरो में निवेदन किया—"भगवन्! आपके अनुग्रह का प्यासा यहा तक खिचा आया हूँ। वह मुझे प्राप्त हो गया है। मेरी अभिलाषा है, मैं पर-काय-प्रवेश विद्या की साधना करूँ। प्रभो! आपका मार्ग-दर्शन मेरे लिए परम आवश्यक है।"

योगी ने राजा के निवेदन को स्वीकार कर लिया।

उसे उस विद्या का रहस्य बतलाया गया। किन्तु, योगी ने कहा—"इस विद्या का अधिकारी तू एक ही हो सकता है। तेरा यह सहवर्ती इसके लिए सर्वथा अपात्र है।"

मंत्री की आशाओं पर पानी फिर गया। उसकी आँखें आँसू उगलने लगी। राजा का हृदय पसीजा। उसने योगी से प्रार्थना की—"यदि मेरे मंत्री की यह साध अधूरी रहती है, तो मेरा मन भी उनना रहेगा, अतः आप मेरे पर अनुग्रहशील होकर इसे भी विद्या प्रदान करें।"

योगी ने राजा को सावधान करते हुए कहा—"तेरा यह आग्रह यदि मैंने स्वीकार कर लिया, तो यह तेरे ही अनर्थ के लिए होगा। तू अपने भविष्य का चिन्तन कर। इसकी चिन्ता में उलझ कर अपना जीवन संकट में क्यों डाल रहा है? यह कृतघ्नी और पापात्मा है।"

राजा का हृदय पवित्र था। उसे कहीं कुटिलता दृष्टिगत भी नहीं हो रही थी। उसने पुनः आग्रह किया—"आपके चरणों से क्या कोई खाली हाथ लौटेगा? यह भी बड़ी आशायें संजोये मेरे साथ आया है। इसकी ओर न देखकर मेरे पर अनुग्रह करें।"

योगी ने राजा की नियति को टालने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु, सफलता नही मिली। योगी ने मत्री को भी विद्या का रहस्य बतला दिया।

लक्ष्य मे सफल होकर राजा और मत्री अपने नगर की ओर चले। अटवी को लाँघकर एक सरोवर पर उन्होने विश्राम किया। जल-क्रीडा मे निमग्न राजा ने पास ही पडे हाथी के एक कलेवर को देखा। प्राप्त विद्या के परीक्षण के लिए राजा का मन मचल उठा। उसने अपने शरीर की सार-सम्भाल मंत्री को सौप दी और स्वय हाथी के कलेवर में प्रविष्ट हो गया। हाथी तत्काल सचेतन होकर खडा हो गया। वन-क्रीडा के अभिप्राय से गजरूप राजा जगल की ओर चल दिया।

मत्री ने जिस दिन रानी निवृत्ति को देखा था, उसी दिन से उसके मन में भी उसे पाने की अव्यक्त आतुरता थी। आज उसे अवसर हाथ लगा। उसने राजा के शरीर मे अपने प्राण स्थापित कर दिए। अपने शरीर को खड-खड कर समाप्त कर दिया और गजरूप राजा से आँख बचाता हुआ नगर की ओर चला। विद्या प्राप्त कर नगर लौटने पर महान् उत्सव मनाया गया। शहर में चारो ओर उल्लास छा रहा था।

उसे उस विद्या का रहस्य बतलाया गया। किन्तु, योगी ने कहा—"इस विद्या का अधिकारी तू एक ही हो सकता है। तेरा यह सहवर्ती इसके लिए सर्वथा अपात्र है।"

मंत्री की आशाओं पर पानी फिर गया। उसकी आँखें आँसू उगलने लगीं। राजा का हृदय पसीजा। उसने योगी से प्रार्थना की—"यदि मेरे मंत्री की यह साध अधूरी रहती है, तो मेरा मन भी उमना रहेगा, अत आप मेरे पर अनुग्रहशील होकर इसे भी विद्या प्रदान करें।"

योगी ने राजा को सावधान करते हुए कहा—"तेरा यह आग्रह यदि मैंने स्वीकार कर लिया, तो यह तेरे ही अनर्थ के लिए होगा। तू अपने भविष्य का चिन्तन कर। इसकी चिन्ता में उलझ कर अपना जीवन सकट में क्यों डाल रहा है? यह कृतघ्नी और पापात्मा है।"

राजा का हृदय पवित्र था। उसे कहीं कुटिलता दृष्टिगत भी नहीं हो रही थी। उसने पुन आग्रह किया—"आपके चरणों से क्या कोई खाली हाथ लौटेगा? यह भी बड़ी आशायें सजोये मेरे साथ आया है। इसकी ओर न देखकर मेरे पर अनुग्रह करें।"

योगी ने राजा की नियति को टालने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु, सफलता नही मिली। योगी ने मत्री को भी विद्या का रहस्य बतला दिया।

लक्ष्य मे सफल होकर राजा और मत्री अपने नगर की ओर चले। अटवी को लाँघकर एक सरोवर पर उन्होने विश्राम किया। जल-क्रीडा मे निमग्न राजा ने पास ही पडे हाथी के एक कलेवर को देखा। प्राप्त विद्या के परीक्षण के लिए राजा का मन मचल उठा। उसने अपने शरीर की सार-सम्भाल मंत्री को सौप दी और स्वय हाथी के कलेवर मे प्रविष्ट हो गया। हाथी तत्काल सचेतन होकर खडा हो गया। वन-क्रीडा के अभिप्राय से गजरूप राजा जगल की ओर चल दिया।

मत्री ने जिस दिन रानी निवृत्ति को देखा था, उसी दिन से उसके मन मे भी उसे पाने की अव्यक्त आतुरता थी। आज उसे अवसर हाथ लगा। उसने राजा के शरीर मे अपने प्राण स्थापित कर दिए। अपने शरीर को खड-खड कर समाप्त कर दिया और गजरूप राजा से आँख बचाता हुआ नगर की ओर चला। विद्या प्राप्त कर नगर लौटने पर महान् उत्सव मनाया गया। शहर मे चारो ओर उल्लास छा रहा था।

सबके दिल में यह प्रश्न भी उभर रहा था कि मन्त्री कहाँ रहा ? नृपरूप मन्त्री ने उस प्रश्न को भाप लिया। स्वत: ही उसका स्पष्टीकरण कर दिया, विद्या तो प्राप्त हुई, किन्तु, मन्त्री जैसे आत्मीय व्यक्ति से हाथ भी धोने पड़े हैं। राह में एक स्थान पर सिंह ने हमारे पर आक्रमण किया। उस समय मुझे बचाने के लिए मन्त्री ने अपने प्राण दे दिए। ऐसे स्वामि-भक्त मन्त्री पर मुझे गौरव है।

गजरूप राजा कुछ ही क्षणों में वन-क्रीड़ा से लौट आया। उसे अपना शरीर तथा मन्त्री कहीं नहीं दिखाई दिए। रानी निवृत्ति और योगीराज सदानन्द के शब्द उसकी स्मृति पर तैरने लगे। कष्टमय जीवन की झलक उसने समक्ष स्पष्ट हो गई। वह तत्काल वहाँ से बाहर की ओर चला। उसे आभास हो गया, रानी निवृत्ति को पाने के लिए मन्त्री ने यह षड्यन्त्र रचा है।

नृपरूप मन्त्री शहर-प्रवेश के अनन्तर रानी निवृत्ति के महलों में पहुँचा। विद्या सिद्ध कर राजा के लौट आने पर उसे सबसे अधिक प्रसन्नता थी। किन्तु, नृप-रूप मन्त्री से जब उसने कुछ क्षण बातें की, तो उसकी प्रसन्नता खिन्नता में बदल गई। उसे पूर्ण विश्वास हो गया, राजा के शरीर में यह धूर्त मन्त्री ही है। इसने

मायाचार से राजा को कहीं इधर-उधर कर दिया है। इसकी कलई शीघ्र ही खुलनी चाहिए। रानी निवृत्ति बहुत दक्ष थी। उसने कालक्षेप की दृष्टि से कहा—"सफलता प्राप्त कर आप पधारे, मेरी चिर-प्रतीक्षित साध आज पूर्ण हो गई है, किन्तु, एक निवेदन है। जब आपने विद्या प्राप्त करने के लिए प्रस्थान किया था, उस समय मैंने सोचा था, छ महीने से कम आपको समय नहीं लगेगा। इस अवधि मे विशेष धार्मिक जागरण हो, इस अभिप्राय से मैंने कुछ अभिग्रह ग्रहण किए थे छ महीने तक भूमि-शयन करूँगी, अखड ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी और प्रतिदिन आयम्बिल तप करूँगी। छ महीने की अवधि मे कुछ दिन अवशिष्ट है। मेरे अभिग्रह का निरतिचार पालन हो, इस उद्देश्य से निवेदन है, तब तक आप मेरे महलो मे न आये।"

नृपरूपी मत्री ने सोचा, यदि इतने महीने गुजर गये, तो यह तो बहुत छोटी अवधि है। पलक मारते ही गुजर जायेगी। वह आश्वस्त होकर राजमहलों में लौट आया।

गजरूप राजा अविराम अपने नगर की ओर बढा जा रहा था। नृपरूप मत्री इससे अनजान नही था।

वह जानता था कि वह आयेगा और अपनी ओर से कुछ असफल प्रयत्न भी करेगा। यदि पहले से ही प्रतिकार कर दिया जाये, तो उचित रहेगा। उसने अपने विश्वस्त सैनिकों को उसी मार्ग की ओर भेजा। उन्हें कड़ा आदेश दिया गया कि अमुक प्रकार के हाथी को देखते ही मार डालो। सैनिकों ने वही किया। जंगल में हाथी और सैनिकों की मुठभेड़ हुई। हाथी उनके समक्ष टिक नहीं पाया। जब राजा ने विकट परिस्थिति देखी, तो अपने प्राणों का वहाँ से समावर्तन किया और कुछ ही दूरी पर पड़े एक हिरण के कलेवर में उन्हें प्रस्थापित कर दिया। नृपरूप मन्त्री ने इसे भी भाँप लिया। उस हिरण को मारने के लिए उसने कुशल शिकारियों को भेजा। उन्होंने हिरण पर विजय पा ली। हिरणरूप राजा ने अपने प्राणों को वहाँ से समावर्तित कर एक तोते के कलेवर में उन्हें समारोपित किया। तोता वहाँ से उड़ा। रानी निवृत्ति के धवल गृह के समीपवर्ती उद्यान में एक आम्र के वृक्ष पर आ बैठा। मन्त्री ने उसको वहाँ भी नहीं छोड़ा। उसने कुशल पाशिकों को उसके पीछे भेजा। उन्होंने छद्म वन में तोते को जाल में फंसा लिया। हाथ में लेकर उसका गला घोटने लगे। तोते ने अपनी चातुरी

से काम लिया। उसने कहा—"आप मुझे क्यों मारते हो? यदि मुझे जीवित छोड़ दो, तो मैं आपको लखपति बना सकता हूं।"

एक तोता हमें लखपति बना सकता है? यह प्रश्न सब के मस्तिष्क में कौंध गया। उन्होंने उसकी थाह लेनी चाही। सबने एक साथ कहा—"यदि तुम हमें लखपति बना दो, तो हम तुम्हें जीवन-दान दे सकते हैं।"

तोते ने कहा—"आप मुझे अभी किसी जन-संकुल चौराहे पर ले चलो। वहां जो भी व्यक्ति एक लाख मुद्राएं दे, उसके हाथ बेच दो। तनिक भी चिन्ता न करो। लाख मुद्राओं से मुझे खरीदने वाला आपको ग्राहक मिल जाएगा।

पारधियों के मन में आश्चर्य था। फिर भी वे तोते को लेकर चौराहे पर आए। बोलियां लगने लगीं। तोता सुन्दर था। प्रत्येक ग्राहक उसे लेना चाहता, पर, लाख मुद्राओं का मूल्य सुनकर सभी के पांव ठिठक जाते। सारे शहर में विद्युत् की भांति बहुमूल्य तोते की बात फैल गई। रानी निवृत्ति की एक दासी सब्जी लेने के लिए उसी चौराहे पर आई। उसने भी तोते को देखा। उसे वह बहुत भव्य लगा, किन्तु, पहचान नहीं पाई। तोते ने दासी को पहचान

लिया। उसने दासी से तत्काल पूछा—"कैसे, तुम्हारी स्वामिनी सानन्द है?"

प्रश्न सुनते ही दासी चकित हुई। वह तत्काल रानी के पास आई। उसने सारी घटना अपनी स्वामिनी को सुनाई। रानी के मन में भी जिज्ञासा एवं आश्चर्य हुआ। साथ ही तोते के प्रति उसके आत्मीय भाव भी जगे। उसने तोते को खरीदने का निश्चय किया। लाख मुद्राओं के लिए दासी को नृप रूप मन्त्री के पास भेजा। लाख मुद्राओं से तोते के खरीदने की बात उसे अनुपयुक्त लगी। उसने दासी को फटकारते हुए कह दिया—"इतनी बड़ी धन राशि से तो हाथी घोड़े खरीदे जाते हैं। एक तोते के लिए मेरे पास इतनी धन राशि नहीं है। तुम्हारे अज्ञान के पीछे मैं राज कोष का इस प्रकार अपव्यय नहीं कर सकता।" भर्त्सना पूर्वक दासी को विसर्जित कर दिया गया।

रानी निवृत्ति को जब यह घटना ज्ञात हुई, उसके स्वाभिमान का सोया सर्प फुफ्कार उठा। उसने आंसू तरेरते हुए दासी से कहा—'निश्चित ही यह व्यक्ति मेरा स्वामी नहीं है। वह तो महान् उदार और विचारशील था। यह तो कोई कृपण और बनिया लगता है। लगता है, किसी प्रपंच से शरीर परिवर्तन हो गया है।"

रानी ने अपने हाथ से तत्काल सवा लाख मूल्य की एक मुद्रिका निकाली और दासी को देते हुए उसने कहा—"ज्यों-त्यों तोते को खरीद कर लाना ही है। लगता है, तोते के आते ही कोई बडा रहस्य उद्-घाटित होगा।"

दासी पलक मारते ही चौराहे पर पहुँची और मुद्रिका देकर तोते को ले आई। तोते को देखते ही रानी का हृदय उमड उठा। वह रहस्य को तो नही जान पाई, पर, उसे लगा, उसका उजडा संसार पुनः बस गया है। उसने तोते को सोने के पिंजरे मे स्थापित कर दिया। रानी के शरीर मे उस समय अव्यक्त पुलकन-सी दौड़ गई।

नृपरूप मत्री ने भर्त्सना करके दासी को विसर्जित तो कर दिया, किन्तु, कुछ ही क्षण बाद उसके मन मे विचार उभरा, रानी ने शुक के लिए इतना आग्रह क्यो किया? इसका भी कोई रहस्य होना चाहिए। सभव है, राजा की आत्मा को धारण करने वाला ही वह तोता हो? और यदि यह वही तोता है तथा रानी के पास पहुँच जाएगा, तो मेरा सारा प्रयत्न बेकार हो जाएगा। नृपरूप मत्री तत्काल रानी निवृत्ति के महलों मे आया। रानी का रोष जग पडा। वह रुष्ट

होकर एक ओर बैठ गई। बहुत बार आग्रह करने पर भी वह उसके साथ बोलने को उत्सुक नहीं हुई। नृपरूप मन्त्री तत्काल सारी घटना समझ गया। उसने तोते पर एक नजर डाली। उसने उसे पहचान लिया। पिंजरे से बाहर निकाला और उसकी गर्दन तोड डाली। राजा ने तोते के शरीर को छोड दिया और वहीं पडे एक भ्रमर के कलेवर में प्रविष्ट हो गया।

तोते को खरीदने के लिए लाख मुद्राओं का न दिया जाना और इतना होने पर भी तोते को मार डालना, रानी के लिए असह्य वेदना थी। उसने रोष के साथ ललकारते हुए नृपरूप मन्त्री से कहा—"आपने मेरे इस तोते को क्यों मारा ? आपको ज्ञात होना चाहिए, यह मेरी निजी सम्पत्ति से खरीदा गया था। इसमें आपका कोई अहसान नहीं था। मेरे इस तोते को शीघ्र ही जिलाओ। यदि ऐसा न हुआ, तो मैं जौहर कर जाऊँगी।"

नृपरूप मन्त्री के लेने के देने पड गए। रानी की फटकार का सामना करने की उसमें शक्ति नहीं थी। वह सोचने लगा, यदि रानी रुष्ट हो गई, तो इच्छित फलित नहीं हो पाएगा। कुछक्षण वह अन्यमनस्क सा बैठा रहा। वह न उगल सका, न निगल सका। रानी

उसने रोष के साथ ललकारते हुए नृपरूप मंत्री से कहा—"आपने मेरे इस तोते को क्यों मारा ? आपको ज्ञात होना चाहिए, यह मेरी निजी सम्पत्ति से खरीदा गया था।

अपनी चातुरी से अपनी योजना क्रियान्वित कर रही थी। उसने कहा—"हाथ पर हाथ रखकर बैठने से कुछ नहीं होगा। तोते को जिलाने का प्रयत्न करो, अन्यथा मेरी चिता सजाओ।"

रानी की चुनौती गम्भीर थी। उसका एक ही उत्तर था, पर-काय-प्रवेश विद्या के आधार पर नृपरूप मन्त्री अपने प्राण तोते में डालकर एक बार उसे जीवित करे। रानी ने परोक्ष रूप से उसे ऐसा करने के लिए विवश कर दिया। नृपरूप मन्त्री अन्दर के कमरे में गया। शय्या पर उस शरीर को स्थापित कर अपने प्राणों को उसने तोते में डाला। तोता तत्काल जीवित हो गया। रानी ने कृत्रिम प्रसन्नता व्यक्त की और कुछ समय का निगमन करने के लिए वह उसके साथ विनोद करने लगी। भ्रमर रूप राजा को अवकाश मिल गया। उसने भ्रमर के शरीर को छोड़ा और अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो गया। तत्काल ही वह रानी निवृत्ति के पास आया। रानी ने उसे पहचान लिया और राजा के गले में लिपट गई। राजा ने सारी आप बीती सुनाई। रानी का रोष भड़क उठा। वह तोते को मारने के लिए दौड़ी। राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"अपनी

करणी का फल यह स्वय पा लेगा । हम निमित्त क्यो बने ?"

शुक-रूप मत्री को अब भान हुआ, मै तो छला गया। किन्तु, उसके हाथ पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ भी नही बचा था । रानी ने उसे लोहे के पिजरे मे डाल दिया ।

राजा शुक्लपक्ष रानी निवृत्ति के साथ बहुत वर्षों तक आनन्दपूर्वक रहा ।

कुचिक सेठ ने कथा का उपसहार करते हुए कहा—"मुनिवर ! आपने भी मेरे साथ कृष्णपाक्षिक मत्री की तरह व्यवहार किया है। मैंने आपके साथ धार्मिक व्यवहार किया और आपने मुझे धोखा दिया। यह आपके लिए उचित नही था ।"

मुनिवर मुनिपति ने कहा—"सेठ ! तू ने मुझे समझने मे गल्ती की है। तेरा निर्णय यथार्थ नही है। कृष्णपाक्षिक की तरह निर्लोभी मुनि को समझना सम्यग् ज्ञान नही है। साधुओ का आचार, उनकी निर्लोभ वृत्ति और अनासक्त भाव आचार्य सुहस्ति के चार शिष्यो की तरह होता है ।"

सेठ ने प्रश्न किया—"मुनिवर ! आचार्य सुहस्ति के वे चार शिष्य कौन थे और उन्होने किस प्रकार

निर्लोभ वृत्ति का परिचय दिया था ?"

मुनि मुनिपति ने कहा—"राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसके अनेक रानियाँ थीं। उनमें सुनन्दा और चेलना प्रसिद्ध थीं। बुद्धि-निधान अभयकुमार सुनन्दा का पुत्र था। एक बार भगवान श्री महावीर भूमण्डल पर विहरण करते हुए राजगृह के गुणशिल उद्यान में पधारे। उद्यानपाल ने भगवान के शुभागमन की राजा श्रेणिक को बधाई दी। राजा ने हर्षित होकर उद्यानपाल को विशेष दान दिया। सपरिवार भगवान को वन्दना नमस्कार करने एवं देशना सुनने के लिए राजा उद्यान में आया। तीन प्रदक्षिणा देकर यथास्थान बैठ गया। हजारों की परिषद् वहाँ एकत्र थी।"

बहुधा व्यक्ति बहिरंग देखता है। आन्तरिक तत्त्व उसकी दृष्टि से ओझल रहता है। इसीलिए सामान्य-सा कोई प्रसंग भी विग्रह का निमित्त बन जाता है। परिषद् में एक व्यक्ति आया। उसके शरीर से पीप रिस रहा था। प्रत्येक अवयव कुष्ट के कारण गल चुके थे। उसने भगवान श्री महावीर को नमस्कार किया और उनके चरणों पर चन्दन की तरह रिस रहे पीप से विलेपन कर दिया। इस घटना को देखते ही श्रेणिक की भौंहें

तन गई। उसे गिरफ्तार करने व मारने की भावना श्रेणिक के मन मे प्रबल हो उठी। किन्तु, भगवान महावीर के समवसरण मे ऐसा करने का उसका साहस नही हुआ।

भगवान महावीर को छीक आई। कुष्ठी तत्काल बोल पडा—"तुम्हारी मृत्यु श्रेयस्कर है।" कुष्ठी के कथन पर श्रेणिक उबल पडा। सयोग की बात थी, उसी समय राजा श्रेणिक को भी छीक आई। कुष्ठी से नही रहा गया। वह बोल पडा—"राजन् ! चिरकाल तक जीवित रहो।" श्रेणिक का रोष असमजस मे बदल गया। प्रधानमत्री अभयकुमार भी वहाँ उपस्थित था। उसने भी उस समय छीक ली। कुष्ठी चुप नही रहा। उसने अपनी टिप्पणी करते हुए कहा—"तुम चाहे जीवित रहो, चाहे मृत्यु का वरण करो।" श्रेणिक के विचारो मे उतार-चढाव आ रहा था। इस बार उसका असमजस पहेली में बदल गया। फिर भी वह चुप रहा। कालसौकरिक कसाई भी वही था। उसे भी छीक आई। उस पर टीका करते हुए कुष्ठी ने कहा—"तेरा न तो जीवन श्रेयस्कर है और न मृत्यु।"

श्रेणिक का भक्त हृदय डोल उठा। भगवान

निर्लोभ वृत्ति का परिचय दिया था ?"

मुनि मुनिपति ने कहा—"राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसके अनेक रानियाँ थी। उनमे सुनन्दा और चेलना प्रसिद्ध थी। बुद्धि-निधान अभयकुमार सुनन्दा का पुत्र था। एक बार भगवान श्री महावीर भूमण्डल पर विहरण करते हुए राजगृह के गुणशिल उद्यान में पधारे। उद्यानपाल ने भगवान के शुभागमन की राजा श्रेणिक को बधाई दी। राजा ने हर्षित होकर उद्यानपाल को विशेष दान दिया। सपरिवार भगवान को वन्दना-नमस्कार करने एव देशना सुनने के लिए राजा उद्यान में आया। तीन प्रदक्षिणा देकर यथास्थान बैठ गया। हजारो की परिषद् वहाँ एकत्र थी।"

बहुधा व्यक्ति बहिरंग देखता है। आंतरिक तत्व उसकी दृष्टि से ओझल रहता है। इसीलिए सामान्य सा कोई प्रसग भी विग्रह का निमित्त बन जाता है। परिषद् में एक व्यक्ति आया। उसके शरीर से पीप रिस रहा था। प्रत्येक अवयव कुष्ठ के कारण गल चुके थे। उसने भगवान श्री महावीर को नमस्कार किया और उनके चरणो पर चन्दन की तरह रिस रहे पीप से विलेपन कर दिया। इस घटना को देखते ही श्रेणिक की भौंहें

तन गई। उसे गिरफ्तार करने व मारने की भावना श्रेणिक के मन मे प्रवल हो उठी। किन्तु, भगवान महावीर के समवसरण मे ऐसा करने का उसका साहस नही हुआ।

भगवान महावीर को छीक आई। कुष्ठी तत्काल वोल पडा—"तुम्हारी मृत्यु श्रेयस्कर है।" कुष्ठी के कथन पर श्रेणिक उवल पडा। सयोग की बात थी, उसी समय राजा श्रेणिक को भी छीक आई। कुष्ठी से नही रहा गया। वह वोल पडा—"राजन्! चिर-काल तक जीवित रहो।" श्रेणिक का रोष असमजस मे वदल गया। प्रधानमत्री अभयकुमार भी वहाँ उप-स्थित था। उसने भी उस समय छीक ली। कुष्ठी चुप नहीं रहा। उसने अपनी टिप्पणी करते हुए कहा—"तुम चाहे जीवित रहो, चाहे मृत्यु का वरण करो।" श्रेणिक के विचारो मे उतार-चढाव आ रहा था। इस बार उसका असमंजस पहेली में बदल गया। फिर भी वह चुप रहा। कालसौकरिक कसाई भी वही था। उसे भी छीक आई। उस पर टीका करते हुए कुष्ठी ने कहा—"तेरा न तो जीवन श्रेयस्कर है और न मृत्यु।"

श्रेणिक का भक्त हृदय डोल उठा। भगवान्

महावीर के चरणो मे रस्सी का लेप, उनकी मृत्यु को श्रेयस्कर बतलाना तथा जीवन-मृत्यु के बारे में इस प्रकार व्यथ का प्रलाप, श्रेणिक को बहुत बुरा लगा। उसने अपने असमजस व पहेली को दबाया तथा राज्य-भाव मे सुभटो को आदेश दिया, ज्यो ही यह यहाँ से उठकर बाहर आये, इसको गिरफ्तार कर लिया जाये तथा तत्काल मौत के घाट पहुचा दिया जाये। कुष्ठी अविचलित था। उसके मन पर श्रेणिक के आदेश की कोई प्रतिक्रिया नही हुई। देशना की समाप्ति के बाद वह उठकर शात गति से बाहर गया। सुभट उसके चारो ओर घेरा डाले हुए थे। समवसरण से बाहर पहुचते ही उसका दिव्य रूप हो गया। सुभटों ने ज्यो-ही उसे पकडने का उपक्रम किया, वह आकाश में उछला और अन्तर्धान हो गया। सुभट हाथ मलते ही रह गये।

अपनी असफलता पर आदमी को सहज पश्चा-ताप होता है। सुभट उसी समय राजा श्रेणिक के पास आये। उनके चेहरे उनकी असफलता की सूचना दे रह थे। सारी परिस्थिति जब राजा श्रेणिक को ज्ञात हुई, इस पहेली का उत्तर पान के लिए वह व्यग्र हो उठा। उसने तत्काल विनम्रता पूवक भगवान्

श्री महावीर से पूछा—"भन्ते ! यह कौन था ? आपके चरणों पर इसने रस्सी का लेप क्यों किया ? इस प्रकार अनर्गल प्रलाप करने का उसका क्या अभिप्राय था ? मेरे कुशल सैनिक भी उसे क्यों नहीं पकड पाये ?"

भगवान श्री महावीर ने कहा—"राजन् ! इसकी कथा बहुत विस्तृत तथा घुमावदार है। इसके वार्ता-लाप से बहुत सारे आवृत्त तथ्य उद्घाटित होंगे। क्या तू सब कुछ सुनना चाहता है ?"

राजा श्रेणिक ने शिष्य भाव से अंजलिबद्ध होकर निवेदन किया—"भन्ते ! यदि आपका अनुग्रह हो, तो मेरे मन में बलवती जिज्ञासा है।"

भगवान् श्री महावीर ने कहा—"कोशाम्बी नगरी में शतानीक का राज्य है। उसी नगरी में महादरिद्र और मूर्खाधिराज सेडुक नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम प्रियकान्ता था। सेडुक की आजीविका का साधन भिक्षावृत्ति थी। किन्तु, भाग्य-हीन व्यक्ति को भिक्षा भी सुख से प्राप्त नहीं होती। प्रतिदिन वह सात गाँवों का पूरा चक्कर लगाता। कड़े परिश्रम के बाद रूखी-सूखी भिक्षा मिल पाती। पति-पत्नी का उदर-भरण बहुत कठिन

होता।"

विपदा व्यक्ति के जीवन को कुंठित कर देती है। आशा का स्रोत फिर उसमें बहुत कठिनता से फूटता है। सेडुक की पत्नी गर्भवती हुई। एक दिन प्रियकान्ता ने उससे कहा—"प्रसव का समय निकट आ रहा है। घृत आदि आवश्यक सामग्री जुटाना आरम्भ करें। अभी से प्रयत्न प्रारम्भ करेंगे, तभी कहीं सफलता प्राप्त हो सकेगी।"

सेडुक ने अपनी कमजोरियों को व्यक्त करते हुए कहा—"मुझे न तो मेरे भाग्य ने कभी साथ दिया और न मेरे पास कोई कौशल ही है। घृत आदि सामग्री कैसे जुट पायेगी। कौशल के बिना धन-प्राप्ति भी तो नहीं होती। मैं तो सब ओर से कोरा हूँ।"

प्रियकान्ता ने विश्वास के साथ कहा—"आप महाराजा शतानीक के पास जाएँ। उनकी तन मन से सेवा करें। सम्भव है, तुष्ट होकर राजा आपको कुछ धन प्रदान कर दें।"

सेडुक ने प्रियकान्ता के सुझाव का कोई विरोध नहीं किया, अपितु उसे क्रियान्वित करने के लिए तत्काल चल पड़ा। बीजौरा आदि कुछ फल भी उसने साथ लिए। राज-सभा में पहुँचा। फल राजा को भेंट

किए और मेधा-मग्न हो गया। कुछ दिन बाद राजा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। राजा ने प्रश्न किया—"ब्राह्मण देवता, तुम कौन हो, कहाँ से आये हो और किस प्रयोजन से आये हो ?"

राजा के प्रश्न ने सेडुक की सफलता का द्वार खोल दिया। विनम्रता मे उसने कहा—"राजन् ! दुर्भाग्य का मारा दर-दर की ठोकरे खा रहा हूँ। मूर्खता मेरा आचल नही छोडती है। धन के अभाव मे जीवन दूभर हो रहा है। आपकी अनुकम्पा हो जाए, तो कुछ सुख की सास ले सकू।"

सेडुक की आप-बीती का राजा पर अनुकूल प्रभाव पडा। उसने तत्काल आदेश दिया—"प्रतिदिन वन से पुष्पो का चयन कर मेरे सामने रखा करो। दो रुपये प्रतिदिन राज-भण्डार से तुम्हे मिला करेंगे।"

राजा के आदेश से सेडुक पुलक उठा। उसका दैनिक-क्रम आनन्द से चलने लगा।

एक बार कौशाम्बी तथा चम्पा के राजाओ का पारस्परिक विरोध ठन गया। चम्पा के राजा ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर उसे चारो ओर से घेर लिया। गमनागमन के मार्ग रुक गए। शतानीक ने कौशाम्बी मे रहकर ही मुकाबला किया। काफी समर्थ

होता।"

विपदा व्यक्ति के जीवन को कुंठित कर देती है। आशा का स्रोत फिर उसमें बहुत कठिनता से फूटता है। सेडुक की पत्नी गर्भवती हुई। एक दिन प्रियकान्ता ने उससे कहा—"प्रसव का समय निकट आ रहा है। घृत आदि आवश्यक सामग्री जुटाना आरम्भ करें। अभी से प्रयत्न आरम्भ करेंगे, तभी कहीं सफलता प्राप्त हो सकेगी।"

सेडुक ने अपनी कमजोरियों को व्यक्त करते हुए कहा—"मुझे न तो मेरे भाग्य ने कभी साथ दिया और न मेरे पास कोई कौशल ही है। घृत आदि सामग्री कैसे जुट पायेगी। कौशल के बिना धन-प्राप्ति भी तो नहीं होती। मैं तो सब ओर से कोरा हूँ।"

प्रियकान्ता ने विश्वास के साथ कहा—"आप महाराजा शतानीक के पास जाएँ। उनकी तन-मन से सेवा करें। सम्भव है, तुष्ट होकर राजा आपको कुछ धन प्रदान कर दें।"

सेडुक ने प्रियकान्ता के सुझाव का कोई विरोध नहीं किया, अपितु उसे क्रियान्वित करने के लिए तत्काल चल पड़ा। बीजौरा आदि कुछ फल भी उसने साथ लिए। राज-सभा में पहुँचा। फल राजा को भेंट

किए और सेवा-मग्न हो गया। कुछ दिन बाद राजा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। राजा ने प्रश्न किया—"ब्राह्मण देवता, तुम कौन हो, कहाँ से आये हो और किस प्रयोजन से आये हो?"

राजा के प्रश्न ने सेडुक की सफलता का द्वार खोल दिया। विनम्रता से उसने कहा—"राजन्! दुर्भाग्य का मारा दर-दर की ठोकरें खा रहा हूँ। मूर्खता मेरा आंचल नही छोड़ती है। धन के अभाव मे जीवन दूभर हो रहा है। आपकी अनुकम्पा हो जाए, तो कुछ सुख की सास ले सकू।"

सेडुक की आप-बीती का राजा पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। उसने तत्काल आदेश दिया—"प्रतिदिन वन से पुष्पो का चयन कर मेरे सामने रखा करो। दो रुपये प्रतिदिन राज-भण्डार से तुम्हे मिला करेंगे।"

राजा के आदेश से सेडुक पुलक उठा। उसका दैनिक-क्रम आनन्द से चलने लगा।

एक बार कौशाम्बी तथा चम्पा के राजाओ का पारस्परिक विरोध ठन गया। चम्पा के राजा ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर उसे चारो ओर से घेर लिया। गमनागमन के मार्ग रुक गए। शतानीक ने कौशाम्बी मे रहकर ही मुकाबला किया। काफी समय

होता।"

विपदा व्यक्ति के जीवन को कुंठित कर देती है। आशा का स्रोत फिर उसमें बहुत कठिनता से फूटता है। सेडुक की पत्नी गर्भवती हुई। एक दिन प्रिय कान्ता ने उससे कहा—"प्रसव का समय निकट आ रहा है। घृत आदि आवश्यक सामग्री जुटाना आरम्भ करें। अभी से प्रयत्न आरम्भ करेंगे, तभी कहीं सफलता प्राप्त हो सकेगी।"

सेडुक ने अपनी कमजोरियों को व्यक्त करते हुए कहा—'मुझे न तो मेरे भाग्य ने कभी साथ दिया और न मेरे पास कोई कौशल ही है। घृत आदि सामग्री कैसे जुट पायेगी। कौशल के बिना धन प्राप्ति भी तो नहीं होती। मैं तो सब ओर से कोरा हूँ।"

प्रियकान्ता ने विश्वास के साथ कहा—"आप महाराजा शतानीक के पास जाएँ। उनकी तन-मन से सेवा करें। सम्भव है तुष्ट होकर राजा आपको कुछ धन प्रदान कर दें।'

सेडुक ने प्रियकान्ता के सुझाव का कोई विरोध नहीं किया, अपितु उसे क्रियान्वित करने के लिए तत्काल चल पड़ा। बीजोरा आदि कुछ फल भी उसने साथ लिए। राज-सभा में पहुँचा। फल राजा को भेंट

किए और सेवा-मग्न हो गया। कुछ दिन बाद राजा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। राजा ने प्रश्न किया—"ब्राह्मण देवता, तुम कौन हो, कहाँ से आये हो और किस प्रयोजन से आये हो ?"

राजा के प्रश्न ने सेडुक की सफलता का द्वार खोल दिया। विनम्रता से उसने कहा—"राजन् ! दुर्भाग्य का मारा दर-दर की ठोकरे खा रहा हूँ। मूर्खता मेरा आचल नही छोडती है। धन के अभाव मे जीवन दूभर हो रहा है। आपकी अनुकम्पा हो जाए, तो कुछ सुख की सास ले सकू।"

सेडुक की आप-बीती का राजा पर अनुकूल प्रभाव पडा। उसने तत्काल आदेश दिया—"प्रतिदिन वन से पुष्पो का चयन कर मेरे सामने रखा करो। दो रुपये प्रतिदिन राज-भण्डार से तुम्हे मिला करेंगे।"

राजा के आदेश से सेडुक पुलक उठा। उसका दैनिक-क्रम आनन्द से चलने लगा।

एक बार कोशाम्बी तथा चम्पा के राजाओ का पारस्परिक विरोध ठन गया। चम्पा के राजा ने कौशाम्बी पर आक्रमण कर उसे चारो ओर से घेर लिया। गमनागमन के मार्ग रुक गए। शतानीक ने कौशाम्वी मे रहकर ही मुकाबला किया। काफी समय

बीत गया। वर्षा ऋतु आ गई। चम्पा-नरेश के समक्ष विकट समस्या उपस्थित हो गई। वापस जाना सम्मान के विरुद्ध था और मूसलाधार वर्षा में वहाँ टिक पाना प्रकृति से लोहा लेना था। चिन्तन किया गया। चम्पा नरेश ने निर्णय लिया, कौशाम्बी की सेना बहुत कम है। सन्नद्ध भी नहीं है। यदि मैं अपनी सैन्य-संख्या में कटौती कर दूँ, तो क्या आपत्ति है? अपार सेना की व्यवस्था में कठिनता होती है। थोड़ी सेना के लिए व्यवस्था सुगमता से हो जाएगी। चम्पा नरेश ने अपने निर्णय को क्रियान्वित किया। कुछ सैनिकों को खेतों में काम लगा दिया। छोटी सी टुकड़ी को अपने पास रखकर चम्पा-नरेश निश्चिन्त हो गया।

अवसर की छोटी सेवा भी बहुत बड़े लाभ का निमित्त बन जाती है। सेडुक फूल लेने के लिए वन में गया। चम्पा की थोड़ी-सी सैन्य सामग्री को देखकर शीघ्र ही राजा शतानीक के पास आया। सारे गुप्त सम्वादों से राजा को सूचित किया। शतानीक के प्रसन्नता स्वाभाविक थी। उसने नवीन व्यूह-रचना के साथ चम्पा की सेना पर एक साथ आक्रमण कर दिया। निश्चिन्त बैठे सैनिकों के छक्के छूट गये। वे अपने जीवन की रक्षा के लिए इधर-उधर दौड़ गये।

चम्पा-नरेश के प्राणों पर भी आ पड़ी। वह भी अकेला जिस ओर अवकाश मिला, दौड़ गया। चम्पा-नरेश की सैन्य-सामग्री, हाथी, घोड़े आदि राजा शतानीक ने अपने अधीन कर लिए। विजयी होकर महोत्सवपूर्वक वह नगर में प्रविष्ट हुआ।

सेडुक का भाग्य चमक गया। राजा ने उसे राज-सभा में सम्मानित किया और यथेच्छ वर मांगने का आग्रह किया। सेडुक के पैर धरती पर नहीं टिक पा रहे थे। किन्तु, वर क्या माँगे; यह उसके समक्ष समस्या थी। उसने निवेदन किया, कुछ भी मांगू, इससे पूर्व मैं अपनी धर्म-पत्नी से परामर्श आवश्यक समझता हूँ। राजा शतानीक ने उसे यह अवकाश दिया।

पति-पत्नी; दोनों ने परामर्श किया। सेडुक की बुद्धि उससे रूठी हुई थी। प्रियकान्ता की सूझ-बूझ ने उसे सूचित किया, यदि ब्राह्मण को ग्राम आदि की जमीदारी तथा प्रचुर धन मिल जायेगा, तो निश्चित ही यह दूसरा विवाह कर लेगा। मेरे गले फाँसी लग जायेगी। उसने तत्काल कहा—"प्रियवर! हमारा भाग्य फल चुका है। सब झंझटों से दूर होकर अब हम आनन्द से रहेंगे। अपने को ऐसा वरदान माँगना चाहिए कि आपको कमाने की आवश्यकता न पड़े

और मुझे चूल्हा फूकने की। एक ही वरदान में दोनों का कष्ट दूर हो जाना चाहिए। सम्भवत आप भी ऐसा ही चाहेंगे।"

सेडुक ने कहा—"बिल्कुल ठीक। पर, यह भी तो बताओ, उसके लिए क्या कहना चाहिए?"

प्रियकान्ता ने स्मित हास्य के साथ कहा—"यह तो मेरे मस्तिष्क में आ गया है। आप राजा से प्रार्थना करें, आपके राज्य के सब घरों मे एक एक कर प्रतिदिन भोजन तथा दक्षिणा मे एक-एक स्वर्ण-मुद्रा। यदि यह मिल जाता है, तो हमारे लिए आनन्द का स्रोत फूट पड़ता है।"

सेडुक तत्काल राज-सभा में पहुँचा। पत्नी द्वारा प्रस्तावित याचना उसने राजा से की। सुनते ही राजा ने कहा—"मूर्ख! यह क्या मागा? बहुत छोटी वस्तु मागी है। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है ग्राम आदि और कुछ भी माँग ले।"

ब्राह्मण देवता की भौहें तन गई। बोला—"यदि देना हो तो यही दे दो। अन्य कुछ भी मुझे नही चाहिए। ग्राम आदि के पचड़े में पड़ना मुझे अच्छा नही लगता। आनन्द से प्रतिदिन अच्छा भोजन करूँगा और स्वर्ण मुद्रा से अपनी अन्य आवश्यकताओं की

सेडुक ने कहा—"विलकुल ठीक। पर, यह भी तो वताओ, उसके लिए क्या कहना चाहिए ?"

प्रियकान्ता ने स्मित हास्य के साथ कहा—"यह तो मेरे मस्तिष्क मे आ गया है। आप राजा से प्रार्थना करें, आपके राज्य के सब घरो मे एक-एक कर प्रतिदिन भोजन तथा दक्षिणा मे एक-एक स्वर्ण-मुद्रा। यदि यह मिल जाता है तो हमारे लिए आनन्द का स्रोत फूट पडता है।"

पूर्ति करता रहूँगा।"

राजा शतानीक ने अपने देश में उक्त उद्घोषणा करवा दी। सेडुक बहुत प्रसन्न हुआ। प्रतिदिन नये-नये घरों में भोजन के लिए जाने लगा। राजमान्य होने से अतिथि से भी बढ़कर उसका सम्मान होता। मिष्टान्न आदि का भव्य भोजन और दक्षिणा में एक स्वर्ण मुद्रा पा वह फूला नहीं समाता। पत्नी की बुद्धि को वह पुन-पुन दाद देता।

लोभ व्यक्ति की सहजता को समाप्त कर भयंकर दूषण उत्पन्न कर देता है। एक दिन सेडुक ने सोचा, राजा शतानीक का राज्य बहुत विस्तृत है। ग्राम नगरो की सख्या भी बहुत है। परिवारों की सख्या उनसे भी कई सौ गुना है। मेरा जीवन छोटा है। प्रतिदिन यदि एक-एक घर मे ही भोजन करूँगा, तो सब घरो तक पहुँच भी नहीं पाऊँगा। अधिक घरो में भोजन करने से स्वर्ण-मुद्राए भी अधिक प्राप्त होंगी। बहुत शीघ्र ही मैं बहुत बडा धनवान हो जाऊगा। उसने अपने निर्णय को क्रियान्वित किया। भोजन करके आता और वमन द्वारा उसको निकाल देता। कुछ ही देर बाद दूसरे घर भोजन के लिए पहुच जाता। एक दिन मे बहुत घरो मे भोजन करने लगा और इस प्रकार

वहुत सारी स्वर्ण-मुद्राए प्रतिदिन पाने लगा ।

घर मे धन-धान्य बढा, तो परिवार भी वढ़ने लगा। क्रमश. पुत्र-पौत्र आदि से उसका खाली आँगन खिलने लगा । किन्तु, पुन-पुन. भोजन करने से तथा वमन आदि से उसके शरीर मे कुष्ठ हो गया । सिर से लेकर पाव तक के सारे अवयव गलित हो गये। पीप रिसने लगा तथा दुर्गन्ध उछलने लगा । फिर भी उसने राज-सभा मे जाने-आने का क्रम चालू रखा । मत्री का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ। उसने राजा से निवेदन किया—सेडुक भयकर कोढ़ से ग्रसित है । इसका राज-सभा मे आवागमन तथा जनता के घरो पर भोजन के लिए जाना खतरे से खाली नही है । अच्छा हो, इसे आदेश प्रदान कर दिया जाये कि अब यह घर पर ही विश्राम करे और इसका कोई पुत्र प्रतिदिन भोजन के लिए प्रत्येक घर में पहुचता रहे । राजा ने तत्काल आदेश प्रसारित कर दिए ।

सेडुक ने विवशता से उस आदेश को स्वीकार किया । उसका पुत्र भोजन के लिए जाने लगा और वह घर पर रहने लगा । कोढ का प्रकोप इतना भयंकर था कि घर वाले भी उससे घृणा करने लगे। उसे घर मे नही रहने दिया गया। एक कोने मे एक कुटिया

बना कर वहाँ उसे अकेला छोड दिया गया । दिन भर उस पर मक्खिया भिनभिनाती रहती । भोजन दूर से ही उसके पास पहुँचा दिया जाता । सारे ही पारिवारिक उसका उपहास करते । बहुए उसे देखकर नाक-भौंह सिकोड़ती रहती । अपने ही पारिवारिको द्वारा तिरस्कृत सेडुक मन मे सोचने लगा, मेरे कारण ही तो ये सम्पन्न हुए है और मेरी ही अवहेलना ? ये समझते होगे, मैं इनका क्या बिगाड सकता हूँ ? पर, मेरे कोप के समक्ष इनका टिक पाना असम्भव हो जाएगा। उसने एक गुप्त योजना बनाई । पुत्रो को बुलाकर उसने कहा—"जीवन से अब मैं ऊब गया हूँ । अपने अन्तिम दिनों में मैं तीर्थ यात्रा का पुण्य करना चाहता हूँ । क्या तुम इससे सहमत हो ?"

पुत्रो को यह योजना बहुत अच्छी लगी । उन्होंने उसका अनुमोदन किया ।

सेडुक ने अपनी बात को दूसरा मोड देते हुए कहा—"तीर्थ-यात्रा से पूर्व अपने कुलाचार के अनुसार एक बकरे की बलि दी जाती है । उससे तुम्हारी ऋद्धि बढेगी और प्रभाव व्यापक होगा । क्या तुम उसका प्रबन्ध कर सकोगे ?"

सभी पुत्रो ने एक साथ कहा—"क्यों नहीं ? यह

तो बहुत छोटी बात है ।"

पुत्रो का चिन्तन था, इस प्रकार सांप भी मर जायेगा और लाठी भी नही टूटेगी । तीर्थ-यात्रा से लौट कर आने की कोई सम्भावना नही है । सेडुक ने पुत्रो के इस चिन्तन को भॉप लिया । फिर भी वह प्रसन्न था, क्योकि उसकी तो कोई दूसरी ही योजना थी । पुत्रो ने एक बकरे की व्यवस्था कर दी । सेडुक ने पुन कहा—"मत्रो के द्वारा कुछ दिन तक बकरे को पवित्र किया जायेगा; अत· गीले यवो की व्यवस्था करो ।" पुत्रो ने उनकी भी व्यवस्था की । सेडुक एकान्त में तो रहता ही था । गीले यवो को उसने कोढ की रस्सी से भावित कर बकरे को खिलाना प्रारम्भ कर दिया । कुछ दिन बीते, वह बकरा भी कोढी हो गया । सेडुक की चाह फल गई । उसने बलि के नाम पर बकरे को मारा और उसका मांस प्रसाद के रूप मे अपने समस्त पारिवारिकों को खिलाया । पारिवारिक सेडुक की कूटनीति से अनजान थे ।

सेडुक कुछ पाथेय लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पडा । कुछ दिनो के बाद एक भयकर अटवी मे प्रविष्ट हुआ । वह भटक गया था; अत. चारो ओर चक्कर लगाता रहा । गर्मी का प्रकोप था । प्यास से आकुल-

व्याकुल हो गया। बहुत समय तक भटकने के बाद एक सरोवर पर उसकी दृष्टि टिकी। सरोवर चारों से वृक्षों से आकीर्ण था। नाना जडी-बूटियाँ भी उसके आस पास उग रही थी। सरोवर का पानी उन सब कारणो से कसैला हो रहा था। सूर्य की प्रचण्ड किरणो से पानी उबल भी रहा था। ऐसा लगता था, जैसे कि कोई क्वाथ हो। सेडुक ने अपनी प्यास बुझाने के लिए उस पानी को भी बहुत मात्रा में पिया। उसकी ग्लान्ति कम नहीं हुई। वह वहीं किसी सघन वृक्ष की छाया मे लेट गया।

बहुत बार अज्ञात कार्य का परिणाम बहुत सुन्दर हो जाता है। एक घण्टे के बाद सेडुक को बहुत मात्रा में विरेचन हुआ। कुष्ठ व्याधि को जैसे कि उसने धो डाला हो। उसे अनुभव हुआ, व्याधि कम हुई है। वह कई दिन तक वही रहा। प्रतिदिन सरोवर का पानी पीता और उसमें स्नान भी करता। उसका वह प्रयोग सफल हुआ। कुछ ही दिनो मे सर्वथा नीरोग हो गया। उसकी शारीरिक कान्ति पहले से भी अधिक निखर गई।

सेडुक को घर की याद आई। वहाँ से वह वापस लौटा। ज्यों ही नगर मे प्रविष्ट हुआ, नागरिको ने उसे

आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखा। किसी को यह कल्पना भी नहीं थी कि सेडुक कभी रोग-मुक्त भी हो सकेगा। सभी ने उससे एक ही प्रश्न पूछा—"तुम्हारी व्याधि कैसे निर्मूल हुई ?" सेडुक ने यथार्थता पर आवरण डालते हुए कहा—"मैंने जगल में बैठकर तपश्चर्यापूर्वक देवाराधन किया था। मेरी वह तपस्या फलवती हुई है।"

घर पहुच कर सेडुक ने देखा, सभी पारिवारिक कुष्ठ रोग से पीडित है। रोगी नीरोग हो गया और नीरोग रुग्ण हो गये। सेडुक को इससे विशेष प्रसन्नता हुई। वह बात को पचा न सका। सहसा उसके मुंह से निकल पडा—"मेरी अवज्ञा का फल तुम लोगों ने शीघ्र ही चख लिया न ?"

मर्माहत पारिवारिकों ने सोचा, यह सब इस दुष्ट के छल का परिणाम है। कुष्ठी बकरे का मास खिला-कर इसने प्रतिशोध भावना का परिचय दिया है। सभी पारिवारिक उसे दुत्कारने लगे। पारिवारिको का रोष यहाँ तक उभरा कि उन्होने उसे घर से निकाल दिया। नागरिकों को जब यह ज्ञात हुआ, उन्होने उसे शहर छोड़कर निकल जाने के लिए विवश कर दिया।

दुर्भाग्य के मारे सेडुक ने राजगृह में शरण ली। आजीविका के लिए वह नगर के द्वारपाल की सेवा में रहने लगा। इसी बीच हमारा (भगवान श्री महावीर का) भी वहाँ आना हुआ। जनता के साथ द्वारपाल भी सेडुक को अपने कार्य पर नियुक्त कर वन्दना करने व देशना सुनने के लिए आया। नगर में उस समय एक रोमांचक घटना घटी।

श्रेणिक ने अपनी जिज्ञासा को व्यक्त करते हुए कहा—"भन्ते ! प्रासंगिक रूप से उस पर भी प्रकाश डालें।"

भगवान् श्री महावीर ने कहा—'नगर-द्वार के समीप नव दुर्गा व्यन्तर देवी का एक आयतन है। प्रत्येक व्यक्ति की कामना सफल होती है, इस भावना से नागरिक धूप, दीप आदि से उसकी पूजा-अर्चा करते हैं। एक दिन एक महर्द्धिक व्यापारी भी वहाँ आया। वह नि सन्तान था। देवी से उसने करबद्ध प्रार्थना की—"माँ ! यदि मेरे पुत्र हो जायेगा, तो मैं तीन बहुमूल्य रत्न भेंट करूँगा।" संयोग की बात थी, कुछ समय बाद उसके पुत्र हो गया। व्यापारी कृपण व धूर्त था। उसने देवी को वे तीन रत्न उपहृत नहीं किए। देवी ने स्वप्न में व्यापारी को पुन पुन स्मरण

भी दिलाया, पर, व्यापारी पर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडा । देवी का रोप फडक उठा । उसने चुनौती देते हुए एक दिन स्वप्न मे सकेत दिया—"यदि प्रतिज्ञा का पालन नही किया गया, तो तेरे पुत्र को मार डालूगी ।"

भय से व्यक्ति सुगमता से मार्ग पर आता है । प्रात काल ही तीन रत्न लेकर सपरिवार वह देवी के मन्दिर मे उपस्थित हुआ। रत्न भेट करना अब भी नही चाहता था, अत उपहृत करते ही उसने धूर्तता से काम लिया । वह बोला—"मा ! तेरा प्रसाद हमको भी तो मिलना चाहिए ? आप अवश्य कृपा करोगी । प्रसाद रूप मे एक रत्न मै अपने लिए, एक पुत्र के लिए तथा एक मै अपनी धर्म-पत्नी के लिए ले रहा हूँ ।" व्यापारी ने रत्न उठाये, नमस्कार किया और तत्काल घर की ओर चल पडा ।

देवी स्तम्भित-सी देखती ही रह गई । उसने सोचा, धूर्त ने मुझे फिर ठग लिया । वह चिन्ता-मग्न बैठी अन्य उपायो पर चिन्तन कर रही थी । उसी समय व्यन्तर देवो का नायक यक्ष देवी से मिलने के लिए आया । देवी को चिन्तातुर देखकर यक्ष ने उसका कारण पूछा । देवी ने सेठ का सारा वृत्त बतलाया ।

यक्ष ठहाका मारकर हसने लगा। उसने देवी से कहा—"तुम तो भाग्यशालिनी हो। घूत सेठ ने अपने द्वारा उपहृत रत्न ही तो वापस लिए? मेरी घटना तो इससे भी अधिक व्यथा उत्पन्न करने वाली है।"

जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए देवी ने कहा—"आपके साथ ऐसी क्या घटना हो गई? विस्तार से प्रकाश डालने का कष्ट करें।"

यक्ष ने कहा—"एक बार एक व्यापारी जहाज लेकर समुद्र मार्ग से जा रहा था। समुद्र के अन्तराल में पर्वत था। जहाज वहाँ आकर स्तम्भित हो गये। व्यापारी ने बहुत प्रयत्न किए, पर, जहाज आगे नहीं चल पाए। व्यापारी ने मेरा स्मरण किया। ज्योंही मैं उपस्थित हुआ, उसने कहा—यदि आपके सहयोग से मेरे जहाज चल पड़ेंगे, तो मैं आपको एक भैंसा भेंट करूँगा। मैंने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और स्तम्भित जहाज चला दिए। व्यापारी सकुशल घर पहुच गया।"

काम सम्पन्न हो जाने के बाद बहुधा व्यक्ति अपने वायदों से मुकर जाता है। उस व्यापारी ने भी वैसा ही किया। मैंने उसे स्वप्न में धमकी दी, यदि भैंसा भेंट नहीं किया जाएगा, तो जीवन से हाथ धोना

पड़ेगा । व्यापारी विवश था । उसने अपनी धूर्तता का परिचय दिया । एक जगली भैसा लाया गया । अपने मित्रो तथा पारिवारिको से घिरा हुआ वाद्य व संगीत के साथ मेरे आयतन में आया । भैसे के गले में फन्दा डालकर उसने उसका एक छोर मेरी मूर्ति से बाँध दिया । आगन्तुको ने कहा—"इस भैसे को अब मारो ।" धूर्त ने उत्तर दिया—"मैने तो इसे यक्ष को उपहृत कर दिया है । यक्ष स्वय ही सब कुछ कर लेगा ।"

नगारे पर चोट पडी और एक साथ सभी वाद्य बज उठे । गीतो की ध्वनि ने भी उसमे योग दिया । जगली भैसा चमक उठा । उसने अपना पौरुष लगाकर मुझे मूल से ही उखाडा और गलियो में दौड पड़ा । पत्थरो से टक्कर खाने पर मेरे शरीर पर अनेक घाव हो गए । मेरे वेदना का कोई ठिकाना नही था । आगन्तुको मे से कुछ सजग हुए । उन्होने तत्काल रस्सी को काट डाला । भैसे से मेरा पीछा छूटा । कुछ लोगो ने मेरी प्रतिमा को उठाया और मूल स्थान पर स्थापित किया ।

यक्ष ने अपनी बात का उपसहार करते हुए कहा—"धूर्तो से जब पाला पडता है, ऐसा ही होता है । तुम्हारे लिए यही श्रेयस्कर है, तुम मौन होकर बैठ जाओ ।

कभी मौका हाथ लगे, तो प्रतिशोध लेना है।"

देवी मन मसोस कर रह गई। वह इस घात में थी कि सेठ को कभी मजा चखाया जाये। एक दिन उसको अवसर हाथ लगा। सेठानी उस ओर से कहीं जा रही थी। देवी ने उसके शरीर में प्रवेश कर दिया। सेठानी बिल्कुल शिथिल हो गई। घर आई। पागल की तरह असबद्ध प्रलाप तथा व्यवहार करने लगी। उसने पुत्र को स्तन-पान भी नहीं करवाया। सेठ इससे बहुत चिन्तित हुआ। उसने बहुत सारे प्रयत्न किए, पर, सफलता नहीं मिली।

रात्रि में देवी ने सेठ को स्वप्न में दर्शन दिए और कहा—"अपनी धूर्तता का तू ने फल पाया है। यदि अभी भी नहीं सम्भलेगा, तो भविष्य तेरा और भी धुंधला होगा।"

सेठ ने स्वप्न में ही अपनी गलती को परिष्कृत करने का सकल्प किया। देवी ने कहा—"कल प्रात लपसी और बड़ा का नैवेद्य यदि उपहृत करे, तो सेठानी ठीक हो सकती है, अन्यथा कोई मार्ग नहीं है।"

देवी के प्रस्ताव को सेठ ने मान लिया। प्रात सब कुछ वैसा ही सम्पादित किया गया, जैसा कि देवी ने चाहा था। लपसी और बड़ा का नैवेद्य लेकर सेठ

मेंढ़क ने कुछ दूर से यह सब कुछ देखा। लपसी और बड़ों को देखकर उसके मुह मे पानी भर आया। ज्यो ही सेठ अपने घर की ओर लौटा, मेंढ़क ने खाने के लिए आसन जमाया। जी-भर कर उसने बड़े खाये।

स्वयं देवी के चरणो में उपस्थित हुआ । बड़ी मात्रा में वहाँ उपहार रखा गया ।

सेडुक ने कुछ दूर से यह सब कुछ देखा । लपसी और बड़ो को देखकर उसके मुह में पानी भर आया। ज्यों ही सेठ अपने घर की ओर लौटा, सेडुक ने खाने के लिए आसन जमाया। जीभर कर उसने बड़े खाये। गर्मी का मौसम था । प्यास लगना सहज था । सेडुक द्वारपाल के स्थान पर बैठा था । उसके पास पानी नहीं था । उठकर कहीं चले जाने पर द्वारपाल का भय कचोट रहा था । वह इधर-उधर कही नही गया । प्यास के मारे उसके प्राण कण्ठ में आ रहे थे । उसका विचार उभरा, जलचर जीव कितने धन्य है, जो दिन भर जल-क्रीडा करते हैं । मैं अधन्य हूं, दुर्भाग्यशाली हूं, जो बिना पानी के तड़प रहा हूं। कुछ समय बाद वह पानी-पानी की रट लगाता हुआ बेहोश हो गया। प्यास बढती जा रही थी । कुछ ही देर बाद उसने मेंडुक के प्राण तन्तु तोड डाले । सेडुक मर कर नगर-द्वार की समीपवर्ती वापी मे मेंढक हुआ ।

राजा श्रेणिक ने निवेदन किया—"भन्ते ! मेरा मूल प्रश्न तो अब तक असमाहित ही है । कृपया, उसकी ओर भी गौर फरमायें।"

भगवान् महावीर ने कहा—"जो कुछ मैंने कहा है, वह उसी उत्तर की श्रृंखलता में है। तुम सेढुक की अगली कथा सुनो।"

श्रेणिक लीन होकर बैठ गया। भगवान् महावीर ने कहा—"हमारा बहुत बार यहा आगमन होता रहता है। एक बार हम यहा आए। पनिहारिनें जल भरने के लिए वापी पर आई। वे हमारे आगमन की चर्चा कर रही थी। मेढक (सेढुक) ने भी उस चर्चा को सुना। उसके हृदय मे उल्लास उभरा। विचारों के अनुकूल प्रवाह से उसे जाति-स्मृति हुई। वंदना करने के लिए वापी से वह चला। ज्यों ही राज-मार्ग मे आया, तेरे घोड़े के खुर के नीचे दबकर वह मर गया। शुभ भावो मे वह रमण कर रहा था। उससे सौधर्म देवलोक के दर्दुराक विमान मे वह देव हुआ।

देव-सभा जुड़ी हुई थी। इन्द्र के समक्ष नाना प्रसगो पर चर्चा चल रही थी। श्रेणिक! उन प्रसगो मे तेरा उल्लेख भी हुआ और वह स्वय इन्द्र ने किया। इन्द्र ने कहा—"भरत क्षेत्र मे राजा श्रेणिक के समान क्षायक सम्यक्त्वी दूसरा कोई नही है।" दर्दुराक देव ने जब यह वृत्त सुना, उसने तेरी परीक्षा करने की सोची। वही देव अभी यहाँ आया था। तू ने देखा,

उसने मेरे पैरों पर लेप किया था। वह लेप रस्सी का नहीं, गोशीष चन्दन का था। तेरी दृष्टि सम्मोहित करने के लिए उसने ऐसा विरुद्ध दिखलाया था।"

श्रेणिक का एक प्रश्न समाहित हो गया। उसने दूसरे प्रश्न की ओर भगवान् 'महावीर का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—"भन्ते ! आपके लिए उसने अमंगल शब्दों का प्रयोग कैसे किया ? दूसरों की छींक पर उसने इतना कटुक नहीं कहा। इसके पीछे उसका क्या प्रयोजन था ?"

भगवान् महावीर ने कहा—'इसके पीछे बहुत बड़ा रहस्य है। उसने मेरे लिए कहा था, अभी तक संसार में कैसे बैठे हैं ? मोक्ष गमन अवश्यम्भावी है, अत अवशिष्ट कर्मों को नष्ट कर शीघ्र ही वहा जायें। मेरी मृत्यु के शब्दोच्चार के साथ मृत्यु-विजय की ध्वनि छुपी हुई थी।"

"और मुझे उसने चिरजीवित रहने के लिए क्या कहा ?" श्रेणिक ने बद्धांजलि प्रश्न किया।

"श्रेणिक ! यहाँ तेरे लिए सब सुख उपलब्ध है, पर, मृत्यु के बाद तेरा नरक गमन अपरिहार्य है। इस उद्देश्य से उसने तेरे चिरजीवन की कामना प्रकट की है" भगवान महावीर ने उत्तर दिया।

"भन्ते ! अभयकुमार के लिए तो उसने जीवन और मृत्यु, दोनो को ही श्रेष्ठ कहा । यह तो और भी जटिल पहेली है ।" श्रेणिक ने पुन. करबद्ध प्रार्थना की ।

"श्रेणिक ! अभयकुमार धार्मिक व्यक्ति है । इसने अपने लिए पारलौकिक सम्बल पूरी मात्रा मे जुटा रखा है । मर कर यह अनुत्तर विमान मे जायेगा । वहाँ प्रचुर सुख है । यहाँ भी प्रधान मन्त्री है; अत सुख की कोई कमी नही है ।" भगवान् महावीर ने उत्तर दिया ।

"भन्ते ! कालसौकरिक को उसने न जीने के लिए कहा और न मृत्यु के लिए । यह तो और भी विशेष रहस्य है न ?" श्रेणिक ने प्रार्थना की ।

"श्रेणिक ! कालसौकरिक कसाई है । यह प्रतिदिन हिसा मे मग्न रहता है । भयकर हिसक है; अत. मरकर सातवें नरक मे जायेगा । वहाँ उसे दारुण वेदना भुगतनी पड़ेगी । इसके दोनो ही जीवन किसी प्रयोजन के नही है ।" भगवान् महावीर ने चौथे रहस्य का उत्तर दिया ।

अपने नरक-गमन का उदन्त सुनकर श्रेणिक बहुत व्यथित हुआ । उसने निवेदन किया—"भन्ते ! आप

जैसे शास्ता के शरण में होने पर, भी क्या मुझे नरक ही जाना पड़ेगा।"

भगवान् महावीर ने कहा—"श्रेणिक! शुभ-अशुभ कर्मों का फल अवश्य भुगतना ही पड़ता है। राजन्! तू ने पहले से ही नरक का निकाचित आयु बांध लिया था। उसे टालने वाला कोई नहीं है। यह फल तो तुझे भोगना ही पड़ेगा। किन्तु राजन्! व्यथित न हो। नरक से निकल कर तू आने वाले उत्सर्पण काल मे पद्मनाम नामक पहला तीर्थंकर भी होगा।"

श्रेणिक को तीर्थंकर होने को जितनी प्रसन्नता थी, उससे अधिक नरक-गमन की व्यथा थी। उसने पूछा—"भन्ते! क्या कोई उपाय है, जिससे नरक की अनिवार्यता टल सके?"

भगवान् महावीर ने कहा—"राजन्! इसे टालने का कोई उपाय नहीं है। यह तो तेरी नियति से सम्बद्ध हो चुका है। फिर भी यदि तेरी कपिला दासी भाव-पूर्वक पात्र-दान दे दे कालसौकरिक एक दिन के लिए भी हिंसा छोड़ दे और नियमित सामायक करने वाला पुण्यक श्रेष्ठी एक सामायक का फल तुझे दे दे, तो नरक-गमन टल सकता है।"

श्रेणिक भगवान् के वचनो से कुछ-कुछ आश्वस्त हुआ। वह सोच रहा था, ये कार्य तो बहुत सुगमता से हो सकेंगे। वह भगवान् महावीर को नमस्कार करके राजमहलो की ओर चला। दुर्दुराक देव वही था। उसे श्रेणिक के सम्यक्त्व की परीक्षा करनी थी। श्रेणिक को उसने एक विकुर्वित मुनि दिखलाया। मुनि सरोवर के तट पर वृक्ष से फल तोडकर अपनी झोली में डाल रहा था। अन्य भी बहुत प्रकार की हिंसाएं भी वह करता जा रहा था। जैन आचार-विधि से प्रतिकूल आचरण देखकर श्रेणिक खिन्न हुआ। उसने मुनि को एकान्त मे ले जाकर अकल्पनीय कार्यो से निवृत्त होने की प्रेरणा दी।

राजा श्रेणिक कुछ ही दूर चला होगा, उसे एक साध्वी दिखलाई दी। बगल मे रजोहरण तथा मुख पर मुखवस्त्रिका थी। वह गर्भवती थी। आखो मे कज्जल दमक रहा था। सुकोमल और श्याम वेणी-दण्ड फैलाए हुए थी। दो पुत्र उसके अगल-बगल मे बैठे खेल रहे थे। सरोवर के तट पर वैठी हुई हाथ-पैर धो रही थी। राजा श्रेणिक उसे देखकर एक वार चौका। उसने उस साध्वी को शान्त भाव से जागरुक करते हुए कहा—"स्वामिनि ! आपका यहाँ इस प्रकार

बठना निग्रन्थ प्रवचन को शोभा नही देता । जो अकृत्य आपने किया है, उससे आपकी आत्मा भी मलिन हुई है और निग्रन्थ सघ के लिए भी निन्दा का प्रसग बना है।"

साध्वी ने तेवर चढाते हुए राजा श्रेणिक को कहा—"राजन् ! मुझे उपदेश न दें। क्या मैंने ही यह अकृत्य किया है ? भगवान् महावीर के सघ में सभी इस प्रकार का दुराचरण करने वाले है। किसी-किसी का अकृत्य कर्म भोग से प्रकट हो जाता है और बहुत सारे छुपा पाप करते हैं। आपकी दृष्टि बहिरग को ही ग्रहण करती है, क्योंकि कभी-कभी सम्पर्क में आते है। मैं सघ मे रहने वाली हू। मैं जानती हूँ, किस-किस प्रकार कौन क्या क्या करता है। आप मेरी और सघ की चिन्ता न करो। अपना रास्ता लो।"

राजा श्रेणिक फिर भी अविचलित था। उसने साध्वी से कहा—"अपने कुकर्म को छुपाने के लिए सघ पर, दोष न मढो। सघ निर्मल है। सभी साधु-साध्वी आचार-कुशल है। तुम्हारे किसी कर्म के उदय से ऐसा हो गया होगा। अपनी प्रवृत्तियों का शोधन करो। तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी व्यवस्था कर देता हूँ। प्रसव के बाद पुन साधना में सलग्न हो जाना।"

आगन्तुक देव श्रेणिक के मनोभावों की परीक्षा

कर रहा था । उसने देखा, श्रेणिक का एक भी रोम चलित नही हुआ है । उसने विकुर्वित सामग्री को तत्काल समेटा और राजा के समक्ष देव-रूप मे प्रकट हुआ । कहा—"राजन् ! तुम धन्य हो। तुम्हारी क्षायक सम्यक्त्व को देखकर मैं नतमस्तक हूँ । इन्द्र ने देव-सभा मे जैसा तुम्हारे लिए कहा था, वह यथार्थ था । मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हूँ । तुम कुछ मांगो ।"

राजा श्रेणिक ने स्मित हास्य के साथ कहा—"मैं क्या मागू ? क्या मेरे लिए कोई अपूर्णता है ?"

देव श्रेणिक की निस्पृहता से भी विशेष प्रभावित हुआ । उसने अपना कर्तव्य समझ कर राजा को एक दिव्य हार तथा मिट्टी के दो गोले भेट किए । साथ ही देव ने यह भी कहा—"यदि यह हार कभी टूट भी जाये, तो इसको सांधने वाला तत्काल मर जायेगा ।

आगन्तुक देव स्वर्ग मे गया । श्रेणिक राजमहलो मे आया । उसने दिव्य हार रानी चेलना को तथा मिट्टी के दोनो गोले रानी नदा को दिये । नन्दा के तेवर चढ गये । उसने आक्रोश के साथ कहा—"दिव्य हार तो आपने चेलना को दिया है और मुझे ये मिट्टी के गोले ? क्या मेरा अपमान नही है ? मैं इनको लेकर क्या करूं ?"

देव मौक्तिक की निस्पृहता से भी विशेष प्रभावित हुआ। उसने अपना कर्तव्य समझ कर राजा को एक दिव्य हार तथा मिट्टी के दो गोले भेंट किए। साथ ही देव ने यह भी कहा— यदि हार कभी टूट भी जावे इसको सांधने वाला तत्काल मर जायेगा।

आगबबूला नन्दा ने दोनो ही गोले खंभे से टकरा दिए। वे तत्काल फूट गये। एक में से चमकते हुए दो कुण्डल निकले और दूसरे में से देव-दूष्य वस्त्र। गुदड़ी के इस गोरख को देखकर नन्दा बहुत हर्षित हुई।

राजा श्रेणिक को ज्यो-ज्यों नरक-गमन की स्मृति होती, सिहर उठता। उसने कपिला दासी को बुलाकर साधुओ को निर्मल भाव से दान देने का आदेश दिया। कपिला ने तत्काल राजा को सूचित कर दिया, यह कार्य मेरे से नही हो पायेगा। श्रेणिक ने उसको प्रलोभन भी दिया। कपिला तमक कर बोली—"यदि मुझे आप स्वर्णमय ही बना दें, तो भी मुझे प्राणान्त स्वीकार्य है, पर, दान देना नही।"

श्रेणिक के निराशा हाथ लगी। उसने कालसौकरिक को बुलाकर कहा—"तू चाहे जितना धन मेरे से ले ले, पर, प्रतिदिन तुम्हारे द्वारा मारे जाने वाले पाच सौ भैंसो की हिंसा एक दिन के लिए छोड दे।"

कालसौकरिक ने भी तत्काल उत्तर दिया—"राजन्! यह कैसे हो सकता है? यह तो मेरा कुलाचार है। किसी भी परिस्थिति में इसे नही छोड़ा जा सकता।"

राजा श्रेणिक ने कालसौकरिक को लाल आंखें

दिखलाई। धमकियां भी दी, पर वह तैयार नहीं हुआ। कुपित श्रेणिक ने आदेश दिया—"इसे अन्ध कूप मे डाल दिया जाये। देखूगा, फिर यह कैसे हिंसा कर सकेगा?"

कालसौकरिक ने फिर भी राजा के आदेश को स्वीकार नही किया। उसे अन्ध कूप में डाल दिया गया।

राजा श्रेणिक ने तीसरा प्रयोग भी किया। पुण्यक श्रेष्ठी को बुलाया। राजा ने उससे एक सामायक के फल की याचना की। श्रेष्ठी ने विनम्रता से निवेदन किया—"राजन! उसका फल तो मेरे पास नहीं है। मै आपको कैसे दे सकता हूं?"

सहज जिज्ञासा करते हुए राजा ने पूछा—"वह कहा है?"

श्रेष्ठी ने कहा—"भगवान् महावीर के पास।"

राजा श्रेणिक दूसरे दिन प्रात भगवान महावीर को वन्दना करने के लिए गया। उसके मन मे सहज पुलकन थी। नमस्कार कर उसने निवेदन किया—"भन्ते! कालसौकरिक को मैंने अन्ध कूप में डाल दिया है। वहा वह हिंसा नही कर सकेगा। क्यों, मेरा नरक-गमन अब तो टल गया है न?"

भगवान् महावीर ने सहज वाणी मे कहा—"राजन् ! तेरा प्रयत्न सफल नही हुआ है। उसने कुए मे वैठे-बैठे ही मृन्मय पाँच सौ भैंसो को मार कर भाव-हिसा की है। वह किसी भी परिस्थिति मे हिसा नही छोड सकेगा।"

राजा श्रेणिक की आँखे विस्फारित ही रह गई। वह भगवान् के समवसरण से चलकर कालसौकरिक के पास आया। वहा उसने उसके द्वारा मारे गये मृन्मय पाच सौ भैंसो को देखा। सिर पर हाथ रखकर बोला—"मेरे पूर्व कर्मो को धिक्कार ! प्रभु के वचन अन्यथा नही हो सकते।"

रानी चेलना के दिव्य हार को देखकर रानी नदा को ईर्ष्या हुई, तो रानी नन्दा के कुण्डल और देवदूष्य को देखकर रानी चेलना के मन मे डाह हुई। उसने राजा श्रेणिक को उलाहना देते हुए कहा—"मुझे तो एक हार ही दिया गया और नन्दा को दो कुण्डलो के साथ देवदूष्य भी ? आपके द्वारा यह भेद-भाव कैसे हुआ ? अधिक और बहुमूल्य वस्तुओ की प्रथम अधिकारिणी तो मैं ही हूं, क्योंकि आपके लिए सबसे अधिक प्रिय मैं हूं।"

राजा श्रेणिक ने स्पष्टीकरण दिया—"मैने तो

तेरा सम्मान सुरक्षित रखते हुए मुझे दिव्य हार और नन्दा को मिट्टी के गोले दिये थे। यदि उनमें से उसके बहुमूल्य वस्तुएं निकल आईं, तो इसमें मेरा क्या दोष है?"

रानी चेलना ने चुनौती के शब्दों में कहा—"कोई बात नहीं है। अब भी वे वस्तुएं मुझे लाकर दो। यदि नहीं दी गईं, तो आत्म-घात करते हुए भी मैं नहीं चूकूंगी। अपना भविष्य सोच लेना।"

राजा श्रेणिक चेलना और नन्दा की पारस्परिक ईर्ष्या से ऊब चुका था। उसने उदासीनता व्यक्त करते हुए सीधा सा उत्तर दे दिया—"जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा ही कर।" और श्रेणिक तत्काल वहां से उठकर अपने महलों में आ गया।

रानी चेलना का रोष भभक उठा। वह आत्म-घात के लिए महलों की ऊपरी मंजिल पर गई। गवाक्ष में खड़ी होकर ज्यों ही वह नीचे गिरने को उद्यत हुई, तीन व्यक्तियों के वार्तालाप ने उसे अपनी ओर खींच लिया। वह उसे सुनने में लीन हो गई।

उसी नगर में आरोहक नामक एक राजकीय गज-पालक रहता था। मगधसेना वेश्या के साथ उसका प्रगाढ़ सम्बन्ध था। मेंठ नामक व्यक्ति भी उसी वेश्या

में आसक्त था। वे तीनों ही उस समय रानी चेलना के महलो के नीचे बातें कर रहे थे। वेश्या ने आरोहक से कहा—"आज उत्सव है। मै उसमें सम्मिलित होना चाहती हूँ। राजा के प्रधान हाथी का चम्पक माला स्वर्ण-भूषण लाकर मुझे दे, ताकि मै उसे पहिन कर उत्सव में सम्मिलित हो सकूं। इस आभूषण के लिए मेरे मन में तीव्र उत्कण्ठा है। यदि इसे पूर्ण नही किया गया, तो मैं गलफास लेकर मर जाऊँगी।"

आरोहक ने अपनी विवशता व्यक्त करते हुए कहा—"राजा के इस आभूषण को लाने में मेरे प्राणों पर बन आयेगी। राजा को जब यह ज्ञात हो जाएगा, फांसी की कडी सजा देगा। मैं तो अपने जीवन को खतरे में नही डाल सकता।"

मगधसेना ने अपना हठ नही छोडा। दोनों के बीच बात ठन गई। मेंठ कुछ कडी प्रकृति का था। उसने कहा—"मित्र ! जो व्यक्ति मधुर शब्दो से नहीं मानता, अपने व पराये हित को नही समझता, उसकी कडे शब्दों मे भर्त्सना की जानी चाहिए। बहुत बार जो मधुरता से नही होता, वह कठोरता से फलित हो जाता है। एक तापस को कही से पलाश के बीज मिल गये थे। उसने उन्हें अपने खेत में बोया, बहुत पानी

तेरा सन्मान सुरक्षित रखते हुए तुझे दिव्य हार और नन्दा को मिट्टी के गोले दिये थे। यदि उनमें से उसके बहुमूल्य वस्तुए निकल आईं, तो इसमें मेरा क्या दोष है ?"

रानी चेलना ने चुनौती के शब्दो में कहा—"कोई बात नहीं है। अब भी वे वस्तुए मुझे लाकर दो। यदि नहीं दी गई, तो आत्म-घात करते हुए भी मैं नही चुकूगी। अपना भविष्य सोच लेना।"

राजा श्रेणिक चेलना और नन्दा की पारस्परिक ईर्ष्या से ऊब चुका था। उसने उदासीनता व्यक्त करते हुए सीधा-सा उत्तर दे दिया—"जैसा तुझे ठीक लगे, वैसा ही कर।" और श्रेणिक तत्काल वहा से उठकर अपने महलों में आ गया।

रानी चेलना का रोष भड़क उठा। वह आत्म-घात के लिए महलों की ऊपरी मंजिल पर गई। गवाक्ष में खड़ी होकर ज्यो ही वह नीचे गिरने को उद्यत हुई, तीन व्यक्तियों के वार्तालाप ने उसे अपनी ओर खींच लिया। वह उसे सुनने में लीन हो गई।

उसी नगर में आरोहक नामक एक राजकीय गज-पालक रहता था। मगधसेना वेश्या के साथ उसका अगाढ सम्बन्ध था। मेंठ नामक व्यक्ति भी उसी वेश्या

में आसक्त था। वे तीनो ही उस समय रानी चेलना के महलों के नीचे बातें कर रहे थे। वेश्या ने आरोहक से कहा—"आज उत्सव है। मैं उसमें सम्मिलित होना चाहती हूँ। राजा के प्रधान हाथी का चम्पक माला स्वर्ण-भूषण लाकर मुझे दे, ताकि मैं उसे पहिन कर उत्सव में सम्मिलित हो सकूं। इस आभूषण के लिए मेरे मन में तीव्र उत्कण्ठा है। यदि इसे पूर्ण नहीं किया गया, तो मैं गलफांस लेकर मर जाऊँगी।"

आरोहक ने अपनी विवशता व्यक्त करते हुए कहा—"राजा के इस आभूषण को लाने में मेरे प्राणों पर बन आयेगी। राजा को जब यह ज्ञात हो जाएगा, फांसी की कड़ी सजा देगा। मैं तो अपने जीवन को खतरे में नहीं डाल सकता।"

मगधसेना ने अपना हट नहीं छोड़ा। दोनों के बीच बात ठन गई। सेंठ कुछ कड़ी प्रकृति का था। उसने कहा—"मित्र! जो व्यक्ति मधुर शब्दो से नहीं मानता, अपने व पराये हित को नहीं समझता, उसकी कड़े शब्दों में भर्त्सना की जानी चाहिए। बहुत बार जो मधुरता से नहीं होता, वह कठोरता से फलित हो जाता है। एक तापस को कहीं से पलाश के बीज मिल गये थे। उसने उन्हें अपने खेत में बोया, बहुत पानी

सींचा और पलाश का वृक्ष क्रमश बहुत बड़ा हो गया। किन्तु, उस पर फूल नही आये। जब सब प्रयत्न असफल हो गए, तो तापस को एक दिन बहुत गुस्सा आया। उसने पलाश के वृक्ष कोजला डाला। कुछ दिनो बाद उसने देखा, वृक्ष स्वय ही बढ़ा और फूलो से लद गया। मनुष्य का भी यही स्वभाव है। बहुत बार प्रार्थना से वह नही मानता, पर, भर्त्सना से उचित मार्ग पर आ जाता है।"

सेठ ने अपनी बात मे बल भरते हुए आरोहक से कहा—"चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने जिस प्रकार बकरे के कथन से प्रेरित होकर अपना हित साधा, तुझे भी उसी प्रकार करना चाहिए।"

आरोहक ने कहा—"मित्र! ब्रह्मदत्त और बकरे की कथा भी तो सुनाओ?"

सेठ ने कहना आरम्भ किया—"काम्पिल्यपुर नगर मे चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त का राज्य था। एक दिन ब्रह्मदत्त वन-विहार के लिए चला। बहुत सारे घुड़सवार सैनिक उसके साथ थे। घोड़े द्वारा अपहृत अकेला चक्रवर्ती गहन जगल में पहुँच गया। थक गया था, अत वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसका घोड़ा वही मर गया। कुछ समय बाद सैनिक वहाँ पहुच गये। चक्रवर्ती सैनिको से

मुख्य रानी ने पूछा—"वन-विहार मे क्या आपने आज कोई आश्चर्य देखा ? यदि देखा है, तो मैं उसके बारे मे जानने को उत्सुक हू ।"

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने कहा—"वन-विहार में मैंने एक रमणीय सरोवर देखा । "

घिरा हुआ नगर मे पहुचा ।

रात्रि में चक्रवर्ती महलों में सो रहा था । मुख्य रानी ने पूछा—"वन-विहार मे क्या आपने आज कोई आश्चर्य देखा ? यदि देखा है, तो मैं उसके बारे में जानने को उत्सुक हू ।"

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने कहा—"वन विहार में मैंने एक रमणीय सरोवर देखा । वहा स्नान करके ज्यों ही मैं तट पर बैठा, एक नवयुवती नाग-कन्या जल-क्रीडा करती हुई सरोवर से बाहर निकली । मेरे पास आई । वह उन्मत्त थी । उसने नि सकोच भाव से मेरे समक्ष पुन-पुन काम-क्रीडा के लिए आग्रह किया । मैंने उसे फटकार दिया, तो वह निराश होकर लौट गई । उसी समय उसे एक अन्य नागकुमार वहाँ मिल गया । दोनो ही निर्लज्ज थे । ज्यो ही उन्होंने मर्यादा का लघन किया, मैंने उन्हे कोडो से पीटा । मैं इस अश्लील घटना को देख नही पाया ।"

ब्रह्मदत्त ने अपनी बात को समाप्त किया और लघु-चिन्ता के लिए महलो से बाहर आया । करबद्ध एक देव उसके चरणों में गिरा । उसने कहा—"राजन् ! मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हू । वर मागो ।"

"अहेतुकी इस कृपा का क्या कारण है ?" चक्र-

र्ती ब्रह्मदत्त ने पूछा।

देव ने कहा—"राजन् ! मैं तुम्हारे वध के लिए आया था। किन्तु, तू ने मेरी आखे खोल दी।"

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के समक्ष जटिल पहेली उपस्थित हो गई। उसने कहा—"मृत्यु और वरदान तो सर्वथा प्रतिकूल है ? यह परिवर्तन कैसे हुआ ?'

देव ने रहस्योद्घाटन करते हुए कहा—"सरोवर मे आपने जो नाग-कन्या देखी थी, वह मेरी ही पत्नी थी। उसने मुझ से कहा—चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने मेरे साथ बलात्कार किया और मुझे पीटा। इस घटना को सुनते ही मेरे बदन में आग लग गई। मैने राजन् ! तुम्हारे वध का दृढ निश्चय किया और यहा चला आया। तुम अपनी पटरानी को सारा वृत्तान्त सुना रहे थे। वातायन मे खडे होकर मैने सब कुछ सुना। नृपश्रेष्ठ ! तुम्हारा जीवन पवित्र है। मैने अपनी पत्नी का दुश्चरित्र जान लिया है। तुम्हारे जैसे पुण्यात्मा का सम्मान करना मेरा पुनीत कर्तव्य है। कुछ-न-कुछ अवश्य अवसर प्रदान करो।"

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने उदासीन भाव से कहा—"मेरे घर पर कोई न्यूनता तो नही है ?"

देव ने अपनी बात में बल भरते हुए पुन: कहा—

"मेरी प्रार्थना निष्फल तो नहीं होगी ।"

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने कहा—'तो आप ऐसा वरदान दीजिए, जिससे मैं सब प्राणियों की भाषा का ज्ञाता हो जाऊं ।"

देव ने अपने अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए कहा—"ऐसे ही होगा, किन्तु, इस तथ्य को अपने तक ही सीमित रखें । किसी के समक्ष प्रकट न करें । यदि प्रकट किया जाएगा, तो मृत्यु निश्चित है ।"

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने उसे स्वीकार कर लिया और देव अपने स्थान पर चला गया ।

बहुधा स्मित हास्य भी अनर्थ का निमित्त बन जाता है, जिसकी कल्पना भी असम्भव होती है । एक दिन चक्रवर्ती अपने अन्त पुर में था । रानी ने चक्रवर्ती के शरीर पर चन्दन का विलेपन किया । कुछ चन्दन बच गया । कटोरी में डाला हुआ वह पास में ही पड़ा था । दीवाल पर गृहगोधा युगल बैठा था । उन दोनों की पारस्परिक प्रीति भी प्रशंसनीय थी । उनमें से मादा गृहगोधा ने अपने पति को कहा—"स्वामिन् ! थोड़ा साहस करें । इस कटोरी में पड़े अवशिष्ट चन्दन में से कुछ लाकर मुझे दें । मैं भी अपने शरीर-ताप को दूर करना चाहती हूं ।'

गृहगोधा ने अपनी पत्नी के कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा—"तू मूर्ख है, किन्तु, मै नही हूं । थोडे से चन्दन के लिए मै अपने प्राणो को सकट मे नहीं डाल सकता । क्या तू नही जानती, ज्यो ही मैं कटोरी के समीप जाऊगा, राजा मुझे मार डालेगा । क्या मेरे प्राणो से भी अधिक आवश्यक और मूल्यवान यह चन्दन है ?"

मादा गृहगोधा ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"मैने यह कभी नही सोचा था कि मेरे स्वामी इतने नि सत्व है । जो व्यक्ति प्राणो को हथेली मे रखकर खेलते है, वे ही जीवन मे कुछ पाते है । कायरो को इस पृथ्वी पर जीने का कोई अधिकार नही है । मुझे क्या पता था, आप इतने निर्वीर्य है कि मेरे छोटे से मनोरथ को भी पूर्ण नही कर सकेंगे ।"

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त उस समय नीद मे नही था । गृहगोधा युगल के वार्तालाप से उसके चेहरे पर स्मित-हास्य उभर आया । रानी की भी उस समय आखे खुली थी। उसने जब यह देखा, मन में कुछ सशय हुआ। उसने तत्काल प्रश्न उपस्थित किया—"स्वामिन् ! इस समय हास्य का क्या कारण ?"

प्रश्न सुनते ही चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त चौका । उसको

एक झटका-सा लगा। उसने प्रसग को झुठलाने का प्रयत्न किया, किन्तु, रानी ने हठ नही छोडा। ब्रह्मदत्त ने कहा—"यदि मै सत्य-सत्य कहूँगा, तो प्राणो से हाथ धोने पडेगे।' रानी को इससे विशेष आश्चर्य हुआ। बात की कलई को खोलने के अभिप्राय से वह ठहाका मारकर हँस पडी। उसने कहा—'बस, यही है, आपका पौरुष ? क्या इसी पौरुष के बल पर आपने भरत के समस्त छ खण्डों का राज्य जीता है ? जो व्यक्ति मरने से घबराता है, क्या वह कभी गौरव पा सकता है ? आपको मृत्यु का क्या भय है ? देखिये, मैं यहाँ सुख में आपकी सगिनी हू तो मृत्यु का भी सहवरण करूँगी। आप निसकोच मुझे सब कुछ कहें।"

रानी ने अपना आग्रह नही छोडा। ब्रह्मदत्त दीवाल और लाठी के बीच आ गया। इसी उधेडबुन में उसका रात्रि-समय बीता। प्रात उसने मन्त्री से परामर्श किया। मन्त्री ने दृढतापूर्वक निवेदन किया—"एक ओर महारानी का आग्रह है और दूसरी ओर जनता के भाग्य के साथ खिलवाड। आप सोचें, आपकी अकाल मृत्यु से जनता पर कितना सन्ताप बढेगा। जनता के लिए आपको महारानी की उपेक्षा

कर देनी चाहिए।"

ब्रह्मदत्त जिस समय मत्री के परामर्श पर चिन्तन करता, उसे लगता, महारानी के समक्ष जनता का पलडा भारी है, किन्तु, जिस समय महारानी के स्नेहिल व्यवहार की स्मृति होती, सारा ससार उसके समक्ष नगण्य प्रतीत होता। इसी ऊहापोह ने ब्रह्मदत्त को एक तट पर पहुचा दिया। महारानी का स्नेह उसमे विजयी हुआ। ब्रह्मदत्त ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—"मैं महारानी के आग्रह की अवहेलना नही कर सकता। जो नारी मृत्यु का सहवरण करने को प्रस्तुत है, वह कितनी महान् है? मुझे उसकी भावना का सम्मान करना चाहिए। मैंने निर्णय कर लिया है, मै उसे सारी घटना सुनाऊँगा। तुम मेरे लिए चिता सजाओ।"

मत्री की आँखो के आगे अन्धेरा छा गया। उसने ब्रह्मदत्त को निर्णय बदलने के लिए दबाव डाला, पर, उसका कोई भी असर नही हुआ। मत्री को हार कर आदेश क्रियान्वित करना पडा। चिता प्रज्ज्वलित कर दी गई। ब्रह्मदत्त स्नान आदि से निवृत्त होकर वहाँ उपस्थित हुआ। मंत्री, सामन्त, सभासद्, अधिकारी, नागरिक सहस्रों की सख्या मे वहाँ एकत्र शोकाकुल

क्रन्दन कर रहे थे।

समय पर कही गई बात लक्ष्य वेध करने वाले बाण की तरह हृदय को वेध डालती है और उससे अप्रत्याशित परिवर्तन हो जाता है। एक ओर चिता धधक रही थी, ब्रह्मदत्त महारानी को बात बताने को उत्सुक हो रहा था, दूसरी ओर राजकीय अश्वों के लिए जवों से भरी गाड़ी जा रही थी। उसके पीछे एक बकरा और एक बकरी, चल रहे थे। बकरी ने सहसा बकरे से कहा—"इस गाड़ी से थोड़े जव लाकर मुझे दो। मुझे उनके खाने का दोहद उत्पन्न हुआ है।"

बकरे ने आँखें तरेरते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा—"क्या तू ने मुझे ब्रह्मदत्त समझ रखा है? मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं कि तेरे एक तुच्छ कार्य के लिए प्राणों को सकट में डाल दू।"

बकरी ने कहा—"तुम निष्ठुर हो। तुम्हें हृदय की पहचान नहीं है। हृदय के समक्ष जीवन-मरण का प्रश्न गौण होता है। ब्रह्मदत्त जैसा चक्रवर्ती यदि एक स्त्री के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करता है, तो वह कोई नादान तो नहीं है? तुम्हें उसका अनुसरण करना चाहिए।"

बकरे ने कहा—"जो स्त्री के पीछे पागल होता है,

उससे अधिक नादान अन्य कौन हो सकता है ? ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती है तो क्या हुआ ? क्या वह गल्ती नही कर सकता ? महारानी के पीछे अमूल्य जीवन को झोकना सबसे बडी मूर्खता है।"

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का मुह महारानी के कान तक पहुँचा हुआ पीछे हट गया। बकरे के कथन ने उसके सुषुप्त स्वाभिमान पर करारी चोट की। ब्रह्मदत्त चिता से भी दूर हट गया। उसने आदेश देकर तत्काल उसे शान्त करवा दिया। चक्रवर्ती राज-महलों में लौट आया। उसने बकरे को अपना गुरु माना और उसे सत्कृत किया। अज-युगल को अपने पास बुलाकर दोनो को स्वर्ण-हार पहनाया गया और मनोहृत्य जव उन्हे खाने के लिए दिए गये।

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने महारानी को शिक्षा देने की ठानी। ज्यो ही वह राज-महलो में आया, महारानी ने पुन उसी प्रश्न को दुहराया, हँसी का कारण बताओ। ब्रह्मदत्त ने यह कहकर कि समय आने पर बतलाऊँगा, प्रसग को टाल दिया। दूसरे ही क्षण उसने सकेतित दासियो की ओर देखा। दासिया तत्काल आगे बढी और उन्होने महारानी को हथकडियो और बेडियो से जकड लिया। ब्रह्मदत्त ने कोडा लिया और महारानी

सुनते ही क्षण उसने संकेतित दासियों की ओर देखा। दासियां तत्काल आगे बढ़ीं और उन्होंने महाराजा को हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ लिया। महाराज ने मौका लिया और महारानी को चार हाथ दिखलाये।

लता नही मिली। वह रात-दिन इसी धुन में रहता। उसके समक्ष एक ही कठिनाई थी कि धागे का अग्र भाग रत्न के छिद्र मे से निकल नही पा रहा था। बहुत चिन्तन के अनन्तर उसने एक उपक्रम किया। धागे के अग्र भाग पर कुशलता से मधु लगा दिया। पास ही रत्न रख दिया। काकतालीय न्याय से एक चीटी आई और धागे को मुह मे दबाकर रत्न के छिद्र मे से दूसरी ओर निकल गई। स्वर्णकार को समस्या हल हो गई। उसने धागे के उस छोर को दूसरे छोर के साथ जोड दिया। हार सध गया। उसी समय स्वर्णकार का सिर फटा और मर कर समीपवर्ती उद्यान मे बन्दर हो गया।

स्वर्णकार के पुत्रो ने हार राजा श्रेणिक को उपहृत किया। श्रेणिक उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। स्वर्णकार के पुत्रो ने अवशिष्ट धन मागा। राजा का दिल लोभ से भर गया था, अत उसने उनको अगूठा दिखला दिया। स्पष्ट शब्दो मे कहा—"यह करार तो तुम्हारे पिता के साथ हुआ था। वह यदि जीवित रहता, तो उसे धन अवश्य दिया जाता, क्योकि उसकी कला से हार सधा है। तुम किस प्रयोजन से मागते हो?"

श्रेणिक के उत्तर ने स्वर्णकार के पुत्रो को व्यथित

किया, पर, वे कर क्या सकते थे। बेचारे हाथ मलते हुए अपने घर लौट आये। इस स्थिति में पिता का दुःखद वियोग उन्हें खलने लगा।

बन्दर नगर में घूमता हुआ एक दिन अपने मकान पर पहुंच गया। वहां उसे सब कुछ परिचित लगने लगा। उसके मानस में ऊहापोह हुआ। परिणाम-स्वरूप जाति-स्मृति हुई। उसने अपने पूर्व भव के वृत्तांत को जाना। उसके मन में जिज्ञासा हुई, राजा ने अव-शिष्ट धन पुत्रों को दिया या नहीं ? वह दुकान पर अपने पुत्रों के पास आया। भूमि पर अक्षर लिखकर उसने सूचित किया, मैं तुम्हारा पिता हूं और तुम मेरे पुत्र हो। राजा ने तुम्हें अवशिष्ट पचास हजार मुद्राएं दी या नहीं ? पुत्रों ने सारी घटना विस्तार से सुना डाली।

मृत्यु का वरण भी किया गया और धन भी नहीं मिला, इस दुहरी मार से बन्दर बहुत व्यथित हुआ। पुत्रों को आश्वासन देकर वह वन में लौट आया। उसने कई प्रकार की योजनाएं बनाईं, किन्तु, अन्त में वह इस निर्णय पर स्थिर हुआ कि किसी प्रकार हार हाथ लग जाये। वह प्रतिदिन राजमहलों पर चक्कर लगाने लगा। किन्तु, हार नहीं मिल पाया।

रानी चेलना एक बार अशोक वाटिका में गई। फूलो का विशिष्ट चयन किया। वापी में जल-क्रीड़ा करने की इच्छा हुई। देव-प्रदत्त हार आदि आभूषणों को उसने उतारा और दासी को दे दिया। स्वयं बावड़ी मे उतर गई। दासी उन सब आभूषणो को थाल मे सजाकर सिर पर लेकर खड़ी हो गई। वही जामुन का एक वृक्ष था। बन्दर घूमता हुआ उसी आम्र-वृक्ष पर आ गया। उसकी नजर हार पर केन्द्रित हुई। उसने इसे उपयुक्त अवसर समझा। धीरे-धीरे वृक्ष-शाखाओं मे घूमता हुआ नीचे की शाखा पर आया। हाथ की चातुरी से उसने हार को उठा लिया। दासी को कुछ भी पता नही चला। बन्दर ने हार को बगल में दबाया और वहा से दौड गया। शीघ्र गति से चल कर वह अपने पुत्रो के पास आया। हार उनको दे दिया। पुत्रों ने भी उसे छुपाकर अपने पास रख लिया।

जल-क्रीडा से निवृत्त होकर रानी चेलना बावड़ी से बाहर आई। एक-एक कर उसने सारे आभूषण पहने। किन्तु, उनमें हार दिखलाई नही दिया। रानी ने दासी से पूछा। वह बिल्कुल अनजान थी। कुछ भी उत्तर नहीं दे सकी। भय से वह कापने भी लगी। रानी चेलना समझ गई, घटना कुछ और ही घटित

जल क्रीड़ा से निवृत्त होकर रानी चेलना बावड़ी से बाहर आई। एक एक कर उसने सारे आभूषण पहने। किन्तु उसमें हार दिखलाई नहीं दिया। रानी ने दासी से पूछा। वह बिलकुल अनजान थी। कुछ भी उत्तर नहीं दे सकी। भय से वह कांपने भी लगी।

हुई है । चारो ओर उसकी खोज करवाई गई, पर, कोई भी सुराग नही मिला । शीघ्रता से राजमहलो मे लौटकर रानी ने राजा श्रेणिक को सूचना दी । राजा ने अभयकुमार को बुलाकर हार की गवेषणा के लिए आज्ञा प्रदान की । अभयकुमार ने प्रतिज्ञा की, सात दिनो मे चोर को प्रकट कर दूगा ।

कार्य की सुगमता मे कई बार अप्रत्याशित कठिनता भी उभर आती है । अभयकुमार ने चोर की सर्वत्र खोज की, किन्तु, उसकी पकड में वह नही आया। हार कर उसने उद्घोषणा करवाई—जिसके पास मे भी हार हो, वह लाकर सौप दे । उसे कोई दण्ड नही दिया जायेगा । यदि बाद में पता लगा, तो मृत्यु-दण्ड अवश्यम्भावी है ।

स्वर्णकार के पुत्रो ने उद्घोषणा को सुना । उन्हे लगा, हार छुपा पाना कठिन है । यदि इसकी कलई खुल जायेगी, तो लेने के देने पड जाएगे । किन्तु, हार लेकर अभयकुमार के समक्ष उपस्थित होने का भी उनमे साहस नही था । इसी बीच घूमता-फिरता वही बन्दर वहां आ गया । उन्होंने हार उसको सौप दिया ।

हार लेकर बन्दर वन में चला गया । दिन-भर

वह वृक्ष के एक कोटर में छुपा बैठा रहा। रात्रि में यक्षायतन की समीपवर्तिनी वाटिका में गया। वहां वह वृक्ष पर बैठा हुआ सोच रहा था हार का क्या किया जाये। यक्षायतन में आचार्य सुहस्ति प्रमुख पांच साधु विराजमान थे। प्रतिक्रमण से निवृत्त होकर आचार्य सुहस्ति ने सम्पूर्ण रात्रि कायोत्सर्ग करने की भावना शिष्यों के समक्ष प्रकट की। शिष्यों ने इसे अपना अहोभाग्य समझा। आचार्य सुहस्ति यक्षायतन के बाहर वाटिका में एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में लीन हो गये। बन्दर भी उसी वृक्ष पर बैठा था। उसने आचार्य को उपयुक्त पात्र समझा। तत्काल हार उनके गले में डालकर निश्चिन्त हो गया।

वह पाक्षिक दिवस था। अभयकुमार भी पौषध लेकर उन्हीं मुनियों के सान्निध्य में धर्म-जागरण कर रहा था। रात्रि के प्रथम प्रहर में मुनिवर शिव आचार्य सुहस्ति की विश्रामणा के लिए उनके उपपात में आये। गुरुवर के गले में उस हार को देखकर वे भयभीत हुए। प्रहर के अन्त में जब वे लौटकर आयतन में आये प्रवेश के समय 'निस्सही' के स्थान पर 'भय वर्तते—भय है', सहसा उनके मुख से ऐसा निकल पड़ा।

अभयकुमार की औत्पातिका बुद्धि थी। उसने प्रश्न किया—"भन्ते! साधु पुरुषो के लिए कैसा भय ?"

मुनिवर शिव ने अभयकुमार के अभिप्राय को भाप लिया। उन्होने उत्तर दिया—"सयमी व्यक्तियो को कोई भी भय नही है। किन्तु, गृहस्थवास मे मैने भय का अनुभव किया था, उसकी स्मृति उभर आई है।"

अभयकुमार ने प्रश्न किया—"भगवन्! वह क्या भय था ? मेरे मन मे सुनने की उत्कठा है।"

मुनिवर शिव ने कहा—महानगरी उज्जयिनी मे शिव और दत्त दो भाई रहते थे। दोनो ही निर्धन थे। एक दिन उन दोनो ने सोचा, धन कमाने के लिए सौराष्ट्र चले। निर्णय सर्वसम्मत रहा, अत दोनो ही चल पडे। सौराष्ट्र में व्यवसाय किया गया, पर, भाग्य ने उनको साथ नही दिया। उन्होने व्यवसाय के अपने कार्य को बदला। दत्त ने खेती-बाडी का धन्धा आरम्भ कर दिया और मै किराना लेकर जहाज में बैठकर विदेश चला गया।

अजनबी प्रदेश मे बहुधा घटनाए भी अजीब ही घटती दिखाई देती है। मै मार्ग से होता हुआ आगे जा रहा था। रात्रि मे मैंने एक वट वृक्ष के नीचे चार

विदेशी व्यापारियों को बैठे हुए दूर से देखा। मैं वृक्षों के झुरमुट में छुपकर उनकी प्रवृत्तियों का देखने लगा। वट की शाखाओं से सहसा डेढ़ हाथ परिमित एक स्वर्ण-पुरुष उतर कर दौड़ा। उसे पकड़ने के लिए वे चारों दौड़े। स्वर्ण-पुरुष ने तत्काल कहा—"अर्थ अनर्थों का मूल होता है।" उन्होंने उसे सुना अनसुना कर दिया। उसे पकड़ कर उन्होंने भूमि पर रख दिया और उसके चारों ओर घेरा डालकर उसकी सुरक्षा के लिए बैठ गये। प्रातःकाल दो व्यापारी भोजन की सामग्री लाने के लिए शहर में गये और दो स्वर्ण पुरुष की रक्षा में वहां ठहरे।

अच्छे और बुरे विचारों का प्रतिबिम्ब एक-दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता। नगर में गये हुए दोनों व्यापारियों ने सोचा, यदि हम किसी प्रकार अपने दोनों साथियों को मार डालते हैं, तो स्वर्ण-पुरुष पर हम दोनों का ही अधिकार होगा। फिर हम मालामाल हो जाएंगे।

उन्होंने अपने विचारों को क्रियान्वित कर डाला। दोनों ने शहर में भर-पेट भोजन कर लिया और साथियों के लिए जो भोजन साथ में लिया उसमें विष मिला डाला।

वट के नीचे बैठे हुए दोनों व्यापारियो के मन मे भी वही विचार आया। उन्होने भी नगर मे गये हुए साथियो को मारने की पक्की ठान ली। ज्यो ही वे भोजन लेकर लौट रहे थे, दोनो ने तलवार के प्रहार से उनको परमधाम पहुचा दिया। वे भी भूख से तडप रहे थे। उन्होने विष-मिश्रित भोजन को खा डाला। कुछ ही क्षणो में वे भी शान्त हो गये।

वृक्षो के झुरमुट मे छिपकर मैने सब कुछ देखा। मैने सोचा, मेरा भाग्य चमक उठा है। मै तत्काल दौडा और स्वर्ण-पुरुष पर मैंने अपना अधिकार जमा लिया। यद्यपि मुझे अनुभव हो चुका था कि अर्थ अनर्थ का मूल इस प्रकार होता है, तथापि मै अपने लोभ का सवरण नही कर सका। मै उसे लेकर दत्त के पास आया। वह वहा कडा परिश्रम कर रहा था। मैने स्वर्ण-पुरुष की प्राप्ति से उसे सूचित करते हुए कहा—"अब हमे परिश्रम की आवश्यकता नही है। घर चल कर आनन्द में समय बितायेगे।"

दोनो ही भाई घर की ओर चले। स्वर्णपुरुष की प्राप्ति से हम दोनो ही की बाछे खिल रही थी। मार्ग मे चलते हुए मेरे मन मे आया, मैंने गलती कर दी। स्वर्ण-पुरुष तो मुझे मिला था। इससे मैं मनचाही

वृक्षों के झुरमुट में छिपकर मैंने सब-कुछ देखा। मैंने सोचा मेरा भाग्य चमक उठा है। मैं तत्काल दौड़ा और स्वर्ण-पुरुष पर मैंने अपना अधिकार जमा लिया। यद्यपि मुझे अनुभव हो चुका था कि अब अक्षय धन मुझे इस प्रकार होना है।

मौज उड़ाता। दत्त का मेरे साथ क्या लेना-देना ? मै इसे अपने साथ क्यो ले आया ? यह अपनी भुगतता। दूसरे ही क्षण मेरे मन मे आया, अभी तक डोर हाथ में है। यदि इसे मै मार डालू, तो सारा धन मेरा ही है। सयोग की वात थी, दत्त के मन मे भी वैसे ही विचार उभरे। हम दोनो ही एक-दूसरे की घात के लिए अवसर देखने लगे। कुछ ही समय वाद हम दोनो अपने नगर के समीप पहुच गए।

बुरे विचारो का आगमन जितने वेग से होता है, बहुधा निर्गमन भी उसी वेग से हो जाता है। वे व्यक्ति के अपने नही होते। नगर के समीप पहुंचते ही मेरे विचारो मे परिवर्तन आया। मैने सोचा, क्या मै तुच्छ धन के लिए भाई की हत्या करूँगा ? उसी समय मैने स्वर्ण-पुरुष को पास के सरोवर में डाल दिया। देखते ही दत्त चौंका। उसने पूछा—"बन्धुवर ! यह क्या किया ?" मैने वस्तु-स्थिति बतलाई। उसने कहा— "आपने बहुत ठीक किया। मेरे मन मे भी इसको लेकर पाप जग रहा था।"

स्वर्ण-पुरुष ज्यो ही सरोवर मे गिरा, उसे एक मत्स्य निगल गया। एक धीवर ने जाल डालकर मत्स्य को बाहर निकाल लिया। भारी-भरकम मत्स्य

को देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने बाजार में बेचकर अच्छे पैसे कमाये।

हम घर पहुचे, तो माता के पैर धरती पर नही टिके। वह हमारे आतिथ्य के लिए दौड कर बाजार मे गई। उसी मत्स्य पर उसकी नजर टिकी। अच्छे पैसे देकर उसने उसे खरीद लिया। स्वर्ण-पुरुष पुन हमारे घर में आ गया। माँ ने उस मत्स्य को हमारी बहिन को दिया। वह भोजन बनाने के लिए बैठी। ज्योंही मत्स्य को चीरा, वह स्वर्ण-पुरुष बाहर आ गया। उसे देखते ही बहिन के मन में लोभ जगा। उसने उसे अपनी बगल मे छुपा लिया और काम में जुट गई। माँ की दृष्टि सहसा उस ओर घूम गई थी। उसने अनुमान किया, सम्भव है, कोई मूल्यवान वस्तु मत्स्य के पेट से निकली है। उसने बहिन से पूछा। बहिन ने प्रसग को टालने के लिए कह दिया—"नही, कुछ भी नही है। माँ आश्वस्त नही हुई। उसने कहा—"बात को छुपाओ मत। जैसी है, वैसी कहो। मैं ज्यों-त्यो हजम नही करने दूगी।"

बहिन का रोष उभर आया। उसने माँ को बुरा-भला कहा। माँ की भी भौहें तन गई। दोनों के विवाद ने झगड़े का रूप ले लिया। परस्पर गुत्थम-

गुत्था हो गई । सयोगवश बहिन की बगल से स्वर्ण पुरुष गिरा । वह माँ के सिर पर पड़ा । उसकी उसी समय मृत्यु हो गई । कोलाहल सुनकर हम दोनों भाई दौड़े । एक ओर माँ का शव पडा था, एक ओर बहिन खडी थी और एक ओर वह स्वर्ण-पुरुष पडा था । अनर्थ का निमित्त उसे जानकर हम विरक्त हो गये और हमने गुरु के चरणों में भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली ।

शिव मुनिवर ने अपनी बात की ओर अभयकुमार को मोड देते हुए कहा—"गृहस्थ-वास में हमने परिग्रह के कारण भय का अनुभव किया था । अभी उस प्रसग की स्मृति उभर रही थी, अतः 'निस्सही' के स्थान पर 'भय वर्तते—भय है'; ऐसा वाक्य अनायास ही मेरे मुख से निकल पडा ।"

दूसरा प्रहर जब समाप्त हुआ, मुनि सुव्रत आचार्य सुहस्ति की वैयावृत्ति से लौटे । उन्होंने भी आचार्यवर के गले में जब हार देखा, तो लौटते समय 'निस्सही' के स्थान पर 'महाभयं वर्तते—महाभय है'; यह उच्चारण हुआ । अभयकुमार नें तत्काल पूछा—"भगवन् ! आपको महाभय ? सम्भव है, इसके पीछे भी कोई घटना हो । कृपया, विस्तार से बतलाने का अनुग्रह

करें।"

सुव्रत मुनि ने कहा—"अग देश मे जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसी देश मे सग्राम नामक एक ग्राम था। वहाँ सुव्रत कौटुम्बिक रहता था। वह मैं ही था। मुझे धन के साथ-साथ लोकप्रियता भी प्राप्त थी। मैं व्यवहार मे सहृदय था। मेरी पत्नी का नाम प्रियमित्रा था। वह स्वैरिणी व व्यभिचारिणी थी। मैं इससे अज्ञात था। एक बार उस ग्राम मे चोरो की धाड पडी। उन्होने सारे ग्राम को लूट लिया। मैं भीत हुआ वहा से भाग खडा हुआ। किसी गुप्त स्थान पर छुपकर मैंने प्राण बचाये। प्रियमित्रा आभूषणों से सजी हुई घर के आगन में बैठी थी। चोर वहा भी पहुच गये। चोरो ने वहा से बहुत सारा धन चुराया। जब वे जाने लगे, पत्नी ने कहा—"तुम मुझे भी ले चलो। मैं भी तुम्हारे साथ आना चाहती हूँ।"

धन और रूपवती स्त्री, दोनों जब उनके हाथ लगे, तो उन्होने उसे भी साथ ले लिया। पल्लीपति के समक्ष धन के साथ उसे भी प्रस्तुत कर दिया। पल्लीपति उसे अपनी पत्नी बनाकर अपने पास रखने लगा।

चोर जब ग्राम से चले गये, तो सभी नागरिक वहा मिले। मैंने भी अपने घर को सम्भाला। धन और

पत्नी; दोनो के अपहरण ने मेरे शरीर में आग लगा दी । पत्नी को वापस लाने का निश्चय कर मै घर से चल पडा । चोर-पल्ली में पहुंचा । रात्रि मे एक वृद्धा कुम्हारी के घर ठहरा। उसे प्रलोभन देकर उसके द्वारा मैंने प्रच्छन्न रूप से पत्नी का पता लगवाया । वृद्धा बडी चतुर थी । उसने प्रत्येक घर में खोज की । वह कही नही मिली । अन्ततोगत्वा पल्लीपति के घर पर उसे वह मिली । वृद्धा ने मेरे आगमन का सवाद उसे बताया । वह बडी धूर्त थी । उसने कृत्रिम प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—"बहुत अच्छा हुआ । मै तो उनकी बाट ही जोह रही थी । आज सायकाल पल्ली-पति चोरी के लिए बाहर जाएगा । उस समय उनको मेरे पास भेज देना । मै उनके साथ घर चली जाऊंगी ।"

वृद्धा कुम्हारी ने तत्काल मुझे सारी बात बतलाई । मैंने सोचा, बहुत सुगमता से सारा काम निबट जायेगा । मैं निश्चित समय पर पल्लीपति के घर पर पहुचा । प्रियमित्रा ने सत्कार करते हुए मुझे भोजन करवाया । आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर बातचीत के लिए हम पल्यक पर बैठे । अपशकुन के कारण पल्लीपति कुछ दूर जाकर ही घर लौट आया । मेरी पत्नी ने उस

करें।"

सुव्रत मुनि ने कहा—"मगध देश में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसी देश में सग्राम नामक एक ग्राम था। वहाँ सुव्रत कौटुम्बिक रहता था। वह मैं ही था। मुझे धन के साथ-साथ लोकप्रियता भी प्राप्त थी। मैं व्यवहार में सहृदय था। मेरी पत्नी का नाम प्रियमित्रा था। वह स्वैरिणी व व्यभिचारिणी थी। मैं इससे अज्ञात था। एक बार उस ग्राम में चोरों की धाड पड़ी। उन्होंने सारे ग्राम को लूट लिया। मैं भीत हुआ वहा से भाग खड़ा हुआ। किसी गुप्त स्थान पर छुपकर मैंने प्राण बचाये। प्रियमित्रा आभूषणों से सजी हुई घर के आंगन में बैठी थी। चोर वहा भी पहुंच गये। चोरो ने वहा से बहुत सारा धन चुराया। जब वे जाने लगे, पत्नी ने कहा—"तुम मुझे भी ले चलो। मैं भी तुम्हारे साथ आना चाहती हूँ।"

धन और रूपवती स्त्री, दोनों जब उनके हाथ लगे, तो उन्होंने उसे भी साथ ले लिया। पल्लीपति के समक्ष धन के साथ उसे भी प्रस्तुत कर दिया। पल्लीपति उसे अपनी पत्नी बनाकर अपने पास रखने लगा।

चोर जब ग्राम से चले गये, तो सभी नागरिक वहा मिले। मैंने भी अपने घर को सम्भाला। धन और

पत्नी; दोनों के अपहरण ने मेरे शरीर में आग लगा दी। पत्नी को वापस लाने का निश्चय कर मै घर से चल पड़ा। चोर-पल्ली में पहुंचा। रात्रि मे एक वृद्धा कुम्हारी के घर ठहरा। उसे प्रलोभन देकर उसके द्वारा मैने प्रच्छन्न रूप से पत्नी का पता लगवाया। वृद्धा बडी चतुर थी। उसने प्रत्येक घर मे खोज की। वह कही नही मिली। अन्ततोगत्वा पल्लीपति के घर पर उसे वह मिली। वृद्धा ने मेरे आगमन का सवाद उसे बताया। वह बडी धूर्त थी। उसने कृत्रिम प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—"बहुत अच्छा हुआ। मैं तो उनकी बाट ही जोह रही थी। आज सायकाल पल्ली-पति चोरी के लिए बाहर जाएगा। उस समय उनको मेरे पास भेज देना। मै उनके साथ घर चली जाऊंगी।"

वृद्धा कुम्हारी ने तत्काल मुझे सारी बात बतलाई। मैने सोचा, बहुत सुगमता से सारा काम निबट जायेगा। मैं निश्चित समय पर पल्लीपति के घर पर पहुचा। प्रियमित्रा ने सत्कार करते हुए मुझे भोजन करवाया। आवश्यक कार्यो से निवृत्त होकर बातचीत के लिए हम पल्यंक पर बैठे। अपशकुन के कारण पल्लीपति कुछ दूर जाकर ही घर लौट आया। मेरी पत्नी ने उस

समय मुझे पल्यक के नीचे छुपा दिया।

पल्लीपति भोजन आदि से निवृत्त होकर उसी पल्यक पर बैठा। प्रियमित्रा ने उस समय उससे पूछा—"कर्मयोग से यदि मेरे पति यहाँ आ जायें, तो आप उनके साथ क्या व्यवहार करें ?"

प्रियमित्रा के अभिप्राय को पल्लीपति समझ नहीं पाया। उसने सज्जनता का परिचय देते हुए कहा—"यदि तेरा पति यहाँ आ जाये, तो उसे नमस्कार कर मैं तुझे सौंप दूंगा।"

प्रियमित्रा की भृकुटि तन गई। उसने पल्लीपति को घूर कर देखा और अपने अभिप्राय को प्रकट किया। पल्लीपति ने तत्काल अपने कथन को बदला और कहा—"यह तो मैंने विनोद मे कहा है। वास्तविकता तो यह है कि यदि वह मेरी नजर मे चढ जाये, तो उसे मारे बिना नही छोड़ूंगा।" प्रियमित्रा बाग-बाग हो गई। उसने आंख से पल्यक के नीचे की ओर संकेत किया। पल्लीपति तत्काल समझ गया। उसने मुझे बाहर निकाल कर चोर की तरह चमड़े की रस्सी से बांधा। दण्डे और कोड़े से पीटकर मुझे अधमरा कर डाला। उसके घर के बाहर एक गहरी खाई थी। बन्धे हुए को ही मुझे उसने उसमे डाल दिया।

पल्लीपति भोजन आदि से निवृत्त होकर उसी पल्यंक पर बैठा। प्रिय-मित्रा ने उससे उस समय पूछा—"कर्मयोग से यदि मेरे पति यहां आ जाये, तो आप उनके साथ क्या व्यवहार करें।"

सुव्रत मुनि ने अभयकुमार से कहा—"कल्पना करो, उस समय मुझे कितनी असह्य वेदना हुई होगी। कुछ दिन मैं वहां पड़ा सिसकता रहा। एक दिन मेरे पुण्य का योग चमका। कोई कुत्ता वहाँ आया। उसने चमड़े की रस्सी को अपने पैने दांतों से काट डाला। बन्धन-मुक्त होकर मैंने अपने साहस को बटोरा। पुनः पल्लीपति के घर आया। पल्लीपति नींद में सोया हुआ था। हाथ में तलवार लेकर मैंने प्रियमित्रा को आगे दिखाई और कहा—'चुपचाप यहां से चल। यदि चूं भी किया तो एक घाव दो टूक कर डालूंगा।" उसे कोई अवकाश नहीं मिला, अतः वह वहां से उठकर मेरे साथ हो गई।

जिसके मन में जो बसा हुआ होता है, उसे कोई उखाड़ नहीं निकाल सकता। प्रियमित्रा मेरे साथ हो तो गई पर, उसका मन पल्लीपति में ही अटका रहा। वह चलती गई और अपने वस्त्रों के टुकड़े मार्ग में डालती गई। मैं इससे अनजान था। ज्यों ही रात्रि समाप्त हुई, मुझे भय सताने लगा। सामने एक सघन झाड़ी थी। हम दोनों वहाँ छुप गये।

प्रातः पल्लीपति जगा। प्रियमित्रा को जब उसने वहां नहीं देखा तो अपने साथियों को साथ लेकर पद-

चिह्नों के अनुसार उसने हमारा पीछा किया। मार्ग मे पडे वस्त्र-खण्डो को देखकर उसे पीछा करने मे सुगमता हुई। वह भी उस वश-वीड मे पहुच गया। प्रियमित्रा को देखकर उसे प्रसन्नता हुई, किन्तु, जब उसने मुझे देखा, उसका रोप चरम सीमा पर पहुच गया। उसने मेरी इतनी कदर्थना की कि मै वहा निढाल हो गया। उसने मेरे हाथो और पैरो मे कीलिया लगा दी। प्रियमित्रा को लेकर वह चल दिया। मै असहाय पडा, देखता रहा। मै भयकर वेदना मे वहा कराहता रहा। एक दिन सौभाग्य से वहा एक बन्दर आ गया। उसने जब मुझे व्यथित देखा, तो उसका दिल भी कलपने लगा। कमल के पत्तो के दोने मे पानी भर कर उसने मुझे पिलाया। एक-एक कर उसने मेरी सारी कीलिया निकाली और सरोहिणी औषधि से लेप कर उसने मेरे सारे घावो को भरा। कुछ ही समय मे मै स्वस्थ हो गया।

मेरे मन मे रह-रह कर यह प्रश्न उभर रहा था, आखिर बन्दर ने मेरी इतनी सेवा कैसे की? बन्दर मेरी जिज्ञासा को समझ गया। मेरी इस पहेली का उत्तर देने के लिए एक दिन उसने मुझसे पूछा—"क्यो महाभाग! तुम मुझे नही पहचानते?" और स्वय ही

उसने उत्तर दिया, मैं अपने पिछले जन्म मे तुम्हारे घर के समीप रहने वाला सिद्ध वैद्य था। आर्त्त ध्यान से मरकर मै इस वन मे बन्दर के रूप उत्पन्न हुआ हू। आज जब कि मैंने तुम्हे देखा, जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ है। उसी के आधार पर मैने तुम्हे पहचाना है।

बन्दर की बातो से मै बहुत प्रमुदित हुआ। उसके प्रति आभार प्रकट करते हुए मैंने कहा—"तुमने मेरी परिचर्या कर अनुगृहीत किया है। मेरे योग्य भी कुछ सेवा बतलाओ।"

मेरे प्रस्ताव पर बन्दर की आखें छलछला गई। उसने कहा—"मै इस वन मे पाच सौ बन्दरियो के परिवार से सुख से रह रहा था। एक दिन एक बलिष्ठ बन्दर ने आकर मुझे यहा से निकाल दिया और स्वय उनका स्वामी बन बैठा। मैं दु खित इधर-उधर घूम रहा हू। यदि तुम्हारा मुझे सहयोग मिल जाये, तो मेरा उजड़ा घर बस जाये।"

उपकारी का उपयुक्त बदला चुकाने के लिए मैंने निर्णय लिया और उसके साथ चल दिया। ज्यो ही उसका शत्रु बन्दर मिला, मैंने उसे प्रेत्यधाम पहुचा दिया। बन्दरियो का पूरा परिवार उसे वापस मिल

गया।

प्रियमित्रा की स्मृति मुझे बार-बार कचोट रही थी। मैने कुछ उपाय सोचे और उसे लाने के लिए पल्ली की ओर चल पड़ा। पल्लीपति गहरी नींद मे सो रहा था। मैने एक ही प्रहार मे उसके दो टुकडे कर डाले। प्रियमित्रा पर मेरा पूरा अधिकार हो गया। मै उसे लेकर वापस लौट रहा था। सहसा वन मे कायोत्सर्ग मे लीन मुनिवर के पावन दर्शन प्राप्त हुए। मैं उनकी सेवा मे बैठ गया। मुनिवर ने धर्मोपदेश दिया। सौभाग्य की बात थी, मेरा मन वैराग्य से भर गया। मैने उसी समय प्रियमित्रा का त्याग कर दिया। दीक्षित होकर साधना में लीन रहने लगा।

मुनि सुव्रत ने घटना का उपसहार करते हुए कहा—"अभी मुझे उस विगत की स्मृति हो रही थी? इसीलिए 'निस्सही' के स्थान पर 'महाभय है,' ऐसा उच्चारण हो गया।

रात्रि के प्रहर बीतते जा रहे थे और एक-एक मुनि आचार्य की वैयावृत्ति से लौट रहे थे। सभी के मुह से भय की ध्वनि निकल रही थी। जब तीसरा प्रहर पूरा हुआ, जोयण मुनि वापस लौटे। उनके मुह से सहसा निकला, 'अतिभय है'। अभयकुमार ने निवे-

दन किया— मुनिवर! आप भी अपने अतीत की अनुभूतियां सुनाने का कष्ट करें।'

लोधण मुनि ने कहा—'उज्जयिनी के सेठ की कन्या के साथ मेरा विवाह हुआ। एक दिन मैं अपनी पत्नी को लाने के लिए अकेला चला। मेरे हाथ में तलवार थी। रात हो गई थी अतः शहर में नहीं गया। बाहर ही ठहरा। जहाँ मैं ठहरा था, वहाँ श्मशान था। अंधेरी रात में एक स्त्री के रुदन का करुण स्वर आ रहा था। मेरे मन में करुणा उमड़ी। मैं उसके पास गया। वहाँ शूलि पर पिरोया हुआ एक पुरुष दिखाई दिया। मैंने उस स्त्री से रोने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया—'यह शूलि पर आरोपित व्यक्ति मेरा पति है। बिना ही किसी अपराध के राज-पुरुषों ने इसे यह दण्ड दिया है। मैं इसके लिए भोजन

पर तुम्हारे कधों पर चढ़ सकती हूँ यदि तुम ऊपर की ओर न देखो।"

मैंने उसकी शर्त को मान लिया। वह मेरे कधो पर चढ़ गई। कुछ ही क्षणो मे मुझे उस महिला के मुख से कुछ चबाने की आवाज सुनाई दी। साथ ही कुछ मास के टुकड़े मेरे कन्धे पर भी पड़े। मैं डरा। मैंने ऊपर की ओर आँखे घुमाई। वह शाकिनी छुरी से उस पुरुष के माँस को नोच रही थी और खा रही थी। तत्काल मैंने उसे नीचे गिरा दिया और नगर की ओर दौडा। वह दुष्टा भी मेरे पीछे दौडी। नगर-द्वार के समीप उसने मुझे पकड लिया और छुरी से जंघा का मास काट लिया। वह वापस चली गई।

वेदना मे कराहता हुआ मैं नगर-द्वार मे पड़ा सिसकियां भर रहा था। मेरी आह को सुनकर कुछ व्यक्ति वहा आये। उन्होने मुझे स्वस्थ होने के लिए दुर्गा के मन्दिर मे जाने का सुझाव दिया। मैं ज्यो-त्यों दुर्गा के मन्दिर में पहुचा। देवी दयालु थी। थोडे मे ही उसका दिल पसीज गया। उसने मुझसे कहा—"क्यो, पथिक ! तुम इस नगर की व्यवस्था को नही जानते हो ? इस नगर मे बहुत सारी योगिनियां तथा भूत-प्रेत रहते है। उनके लिए मैंने ऐसी व्यवस्था की

कन्धा ढ न राहता हुआ मैं नगर द्वार म पड़ा सिसकिया भर रहा था। मरी त्राह का सुनकर कुछ व्यक्ति वहा आय। उन्होने मुझे स्वस्थ होन क लिए बुधा के मन्दिर म पान का सुझाव दिया। मैं ज्यो-त्यो बुधा क मन्दिर म पहुचा।

है कि रात्रि में यदि कोई व्यक्ति नगर से बाहर रह जाए, उसको वे छल सकती हैं, किन्तु, नगरवासियों को त्रास नहीं दिया जा सकता। तुम्हें पता नहीं था, इसलिए तुम्हारे साथ यह घटना घट गई।"

मैंने एक लम्बा निःश्वास छोड़ा। देवी दुर्गा ने मेरी विवशता को भाप लिया। उसने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा—"तुम कोई चिन्ता मत करो। अभी तुम्हें स्वस्थ करती हूं।" देवी ने मेरे घाव पर हाथ फिराया। आश्चर्य की बात थी, मेरा घाव तत्काल भर गया और मैं स्वस्थ हो गया। उस रात्रि में शीत का प्रकोप बहुत था। मेरे पास ओढ़ने के लिए वस्त्र नहीं थे। मैं ठिठुर रहा था। मैं उसी समय ससुराल चला आया। दरवाजे बन्द थे। अन्दर बातें हो रही थीं। मैंने दरवाजे को खटखटाने की बनिस्बत बातें सुनना उचित समझा। माता और पुत्री के बीच बातें हो रही थीं। उसी समय मां ने बेटी से कहा—"आज जो मांस लाई है, यह तो बहुत स्वादिष्ट है। यह मांस किसका है?"

पत्नी इठलाती हुई बोली—"यह मांस तो स्वादिष्ट लगेगा ही, क्योंकि दामाद का है न?" और उसने सारा वृत्तान्त, जो मेरे साथ घटा था, विस्तार से बत-

लाया। जब मुझे यह ज्ञात हुआ, मेरी जंघा का मांस काटने वाली और कोई नहीं, मेरी ही पत्नी थी, तो मुझे संसार से उदासीनता हो गई। मेरा मन वैराग्य से भावित था, अतः मैं वहाँ से सीधा गुरुदेव के उपपात में पहुंचा और प्रव्रजित हो गया।

जीवन-प्रसंग का उपसंहार करते हुए पोषण मुनि ने कहा—"इस समय मुझे इस घटना का स्मरण हो रहा था, अतः 'निस्सही' के स्थान पर 'अतिभय' शब्द का उच्चारण हुआ।"

चौथे प्रहर की समाप्ति पर मुनिवर धन्य आचार्य सुहस्ति की वैयावृत्ति करके लौटे। उन्होंने भी आचार्य-वर के गले में हार देखा था, अतः लौटते समय 'निस्सही' के स्थान पर उनके मुंह से 'भय अतिभय है', सहसा शब्दोच्चारण हुआ। अभयकुमार ने उनसे भी आग्रह किया कि वे भी अपनी अनुभूति पर प्रकाश डालें।

मुनिवर धन्य ने कहा—"उज्जयिनी में अजितसेन राजा था। वहीं पर सुधन नामक सेठ भी रहता था। सेठानी का नाम सुभद्रा था। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम धन्य रखा गया। वह मैं ही हूं। श्रीमती मेरी पत्नी थी। वह विनय तथा पतिव्रत धर्म में कुशल

थी। मैं उसके विनय से इतना सन्तुष्ट था कि उसके कथन को कभी टाल नही सकता। एक दिन वह उदास बैठी थी। मैने उससे उसका कारण पूछा। सकोचवश उसने कुछ भी नही बताया। जब मैंने अत्यधिक आग्रह किया, तो उसने कहा—"मै कस्तूरी मृग की पूछ का मास खाना चाहती हू। किसी भी प्रकार से यदि वह मिल सके, तो अच्छा हो।"

"वह मृग कहा है?" मैने पूछा।

गम्भीर मुद्रा बनाते हुए पत्नी ने कहा—"वह अत्यन्त कष्टपूर्ण स्थान मे है तथा बहुत दूर है। वहां मैं आपको भेजना नही चाहती। वहा यदि आप जाएगे, तो लम्बा समय लग जायेगा। मै एक क्षण भी आपका वियोग सहन नहीं कर सकती।"

मै उसके प्रेम मे पागल था। मैने उससे कहा—"कितना ही कष्ट क्यो न झेलना पड़े, मै तेरी अभिलाषा पूर्ण करूगा। किन्तु, यह तो बतलाओ, वह मृग कहा है?"

पत्नी ने बताया—"राजगृह नगर में राजा श्रेणिक के महलो मे वह मृग क्रीडा के लिए लाया गया है। वहा तक आपका पहुच पाना कठिन हो जाएगा।"

मैने दृढ संकल्प किया और घर से निकल पडा।

क्रमश तेज गति से चलता हुआ राजगृह के समीप एक उद्यान में पहुचा। एक वृक्ष के नीचे मैं विश्राम कर रहा था। वहा सखियो से घिरी एक वेश्या क्रीडा के लिए आई। उसके लावण्य पर आकाश-मार्ग से जाता हुआ एक विद्याधर मोहित हो गया। उसने वेश्या का अपहरण कर लिया। उसके परिवार मे कुहराम मच गया। मैंने धनुष हाथ में लिया और विद्याधर को मार गिराया। वेश्या उसके हाथ से छूट कर सरोवर मे गिरी। वह डूब रही थी। मैंने तत्काल छलाग भर कर उसको वहा से बाहर निकाला। मेरे आत्मीय व्यवहार का उस पर गहरा असर हुआ। वह मुझे अपने घर ले गई। भोजन आदि से उसने मेरा आतिथ्य किया। उसका मेरे प्रति अपनत्व जग रहा था, अत उसने आगमन का उद्देश्य पूछा। मैंने उसे विस्तार से सारा वृत्तन्त सुनाया।

स्त्रिया स्त्रियो के चरित्र को जितनी सूक्ष्मता से जान सकती हैं, पुरुष उतना नही जान सकते। वेश्या ने मेरी पत्नी के चरित्र का मेरे कुछ ही शब्दो में अनुमान लगा लिया। उसने कहा—"सत्पुरुष! आप जिस पत्नी के लिए अपने प्राणो को सकट मे डाल रहे है, वह तो दु शीला है। सम्भवत आप उसके कार-

नामो से अपरिचित है।"

वेश्या के कथन से मेरे हृदय पर गहरा आघात लगा। मैंने उसके कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा—"मेरी पत्नी की बराबरी करने वाली ससार मे कोई सती-साध्वी नही है। ऐसी कटु बात पुन न कहे।"

वेश्या ने तत्काल प्रसग को बदल दिया। एक दिन वह राज-सभा मे नृत्य के लिए जा रही थी। उसने मुझे भी अपने साथ ले लिया। मै भी वहा पहुचा। नृत्य आरम्भ हुआ। सभी व्यक्ति नृत्य को देखने मे मग्न थे। वह मृग भी वही घूम रहा था। अवसर पाकर मैंने उसे मार डाला। पर, मेरा यह कार्य प्रच्छन्न नही रह सका। भेद खुल गया। मृग-रक्षको के द्वारा मै रगे हाथो पकडा गया। मुझे चोर की तरह हथकडियो एव बेडियो मे जकड लिया गया। आरक्षक नृत्य-समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

राज्य-सभा मे सभी दर्शक तन्मय होकर नृत्य देख रहे थे। अपूर्व रस बरस रहा था। ज्यो ही मै पकडा गया, वेश्या ने मुझे देख लिया। नृत्य समाप्त होते ही राजा ने वेश्या को तीन वर दिए। वेश्या बडी चतुर

थी। उसने कहा—अवसर पर मागूंगी। आरक्षकों ने मुझे राजा के समक्ष प्रस्तुत किया। मृग की मृत्यु के संवाद से राजा श्रेणिक का रोष भड़क उठा। उसने तत्काल मेरे वध का आदेश सुना दिया। वेश्या वहीं खड़ी थी। उसने मेरे पर करुणा की। उसने राजा से निवेदन किया, मेरे एक वर के द्वारा आप इसे जीवन दान दें। राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और मृत्यु के मुख तक पहुंचा हुआ भी मैं बच निकला। मैं वेश्या के साथ उसके घर पर आ गया।

राजगृह मे रहते हुए मुझे काफी समय हो गया था। वेश्या से पूछ कर मै अपने नगर की ओर चला। वेश्या भी मेरे साथ आई। मार्ग में उसने मुझसे कहा—"मैं आपको आपकी पत्नी का चरित्र दिखलाना चाहती हू। आखो से देखकर आप मेरे कथन की सत्यता को आक सकेंगे।"

मैंने वेश्या के प्रस्ताव को स्वीकार किया। हम दानो उज्जयिनी के उद्यान में पहुंचे। वेश्या को मैंने वहां बिठला दिया और मैं अकेला प्रच्छन्न रूप से रात्रि मे घर की ओर चला। ज्यों ही अन्धेरा हुआ, मैं घर के एक कोने में छुप कर बैठ गया। कुछ समय

बाद श्रीमती का एक प्रेमी वहा आया । दोनो ने रात्रि तक काम-क्रीडा की । जब वे थक गये, तो गहरी नीद मे सो गये । मैने अवसर देखकर तलवार का एक प्रहार किया, जिससे उसके दो टुकडे हो गये। श्रीमती को उसका उस समय कोई पता नही चल सका । मै पुन वही छुप गया । कुछ देर बाद श्रीमती जगी । उसने अपने प्रेमी को मरा हुआ देखा, तो चिन्तित हुई। किन्तु, अपनी चातुरी से उसने उस घटना को दबा दिया । घर मे ही एक गहरा गड्ढा खोदकर उसे दफना दिया और उस पर चबूतरा बना दिया ।

प्रात काल प्रच्छन्न रूप से घर से निकल कर मै वेश्या के पास पहुचा। सारा वृत्तान्त सुनाकर मैने अपनी गल्ती स्वीकार की । मेरा मन श्रीमती के प्रति घृणा से भर गया था, अत मै घर नही लौटा । वेश्या के साथ पुनः राजगृह आ गया ।

वेश्या का व्यवहार मेरे प्रति बहुत स्नेहिल था; अत कुछ दिन तक तो श्रीमती की स्मृति ही नही हुई, पर, एक दिन यकायक मेरा मन न जाने क्यो, उसके विरह मे कलपने लगा । मैं राजगृह से अपने घर लौट आया । मुझे घर मे देखकर कृत्रिम स्नेह व्यक्त करते हुए उसने स्वागत किया और बहुत दिनो से

श्रीमती जी ऊपर चढ़ गयीं । उनके हाथ में ताजा कढ़ाई में रहा हुआ गरम-गरम घी मेरे ऊपर डाल दिया । मेरा सारा शरीर जल गया ।

लौटने का प्यार-भरा उलाहना भी दिया। मैंने भी प्यार से ही कहा—"तेरे लिए मृग-मांस को खोजने में इतना समय भी लग गया और कार्य भी नहीं हो पाया।"

श्रीमती बड़ी कुशल थी। उसने वाक्-चातुरी से उस प्रसंग को टाल दिया और भोजन बनाने के लिए बैठ गई। मैं जब भोजन के लिए बैठा, तो उसने सर्वप्रथम उस चबूतरे पर बलि रखकर मुझे भोजन परोसा। मैंने इसे सूक्ष्मता से देख लिया था। वह प्रतिदिन वैसा ही करती थी। एक दिन मैंने उसे घेवर बनाने के लिए कहा। वह तैयार हो गई। मैंने उसे विशेष रूप में निर्देश दिया, मुझे खिलाये बिना पहले अन्य किसी को भी नहीं देना है। वह मेरे संकेत को समझ गई। उसने मेरे कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा—"आपसे अधिक प्रिय मेरे कौन है, जिसको मैं पहले भोजन दूँगी। आप इस आशंका को ही निकाल दीजिए।"

मैं भी सावधान था और वह भी सावधान थी। वह घेवर बनाने के लिए बैठी। घी गर्म हो रहा था। उस मायाविनी ने एक चक्र चलाया। सहसा बोल उठी, अरे! यह घेवर तो जल गया। और उसने वह पहला घेवर चबूतरे पर डाल दिया। मुझे बहुत गुस्सा आया। मैंने उसे आड़े हाथों लेते हुए कहा—"पापिनी!

क्या इस चबूतरे के नीचे तेरे पिता का कोई खजाना गड़ा हुआ पड़ा है, जो तू प्रतिदिन सबसे पहले इस पर भोजन रखती है।'

श्रीमती के भी तेवर चढ़ गये। उसने आव देखा न ताव, कड़ाई में रहा हुआ गर्म गर्म घी मेरे ऊपर डाल दिया। मेरा सारा शरीर जल गया। मैं चिल्लाता हुआ वहां से दौड़ा और माता-पिता के पास पहुंचा। माता पिता ने मेरी परिचर्या की, जिससे मैं स्वस्थ हुआ। उस दिन से ही श्रीमती के प्रति तथा संसार के प्रति उदासीनता के वास्तविक विचार मेरे मन में उभरे और मैं दीक्षित हो गया।

धन्य मुनि ने कहा—ज्यों ही उस घटना की पुनरावृत्ति मेरे मस्तिष्क में हुई, मेरे से 'निस्सही' के स्थान पर 'भय-अतिभय' शब्द का सहसा उच्चारण हो गया।

इसी बीच सूर्योदय हो चुका था। अभयकुमार पौषध को पार कर आचार्य सुहस्ति के चरणों में उपस्थित हुआ। गले में उसी हार को देखकर उसने सोचा, भय आदि जिन शब्दों का चारों साधुओं ने प्रयोग किया था, वह सप्रयोजन ही था। साधु तो सदैव निर्लोभ, निस्पृह तथा अनासक्त होते हैं। अभयकुमार ने वह हार लिया और राजा श्रेणिक को समर्पित कर दिया।●